अदल बदल
आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ / संस्करण : प्रथम, १९८४ / मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ / मूल्य : तीस रुपये

ADAL-BADAL *by* Acharya Chatursen Rs. 30.00

मेरी एक परम आत्मीय महिला ने मुझे एक पत्र लिखा। उसमें वे लिखती हैं —

आप सचमुच बड़े निर्दयी हैं। आप यदि मेरे कष्ट का कुछ भी अनुमान कर पाते तो कदापि ऐसा न लिखते कि 'भाग' खड़ी हुई। कौन ऐसी अभागिन होगी, जो अपने प्रिय बन्धुओं को तजकर 'पर-घर', जहां स्वार्थ-भावना को छोड़ और कुछ भी नहीं, जाना पसन्द करे। हमारा 'अपना घर' तो वही है, जहां हम स्वच्छन्दता से बिना आडम्बर और मर्यादा के हंसते-खेलते रहते और काम करते हैं। इस 'पर-घर' नामक पिंजरे में कष्ट के सिवा कुछ नहीं, फिर मेरी गिनती तो उन अभागिनियों में है, जो अन्न-वस्त्र के मोल में किसीका दासत्व स्वीकार करती हैं। आप विश्वास कीजिए, विवाह के पूर्व मैं इतनी सुन्दर थी कि आप विश्वास नहीं कर सकते। अपना विवाह करके मैंने अपने को सब सुखों से रहित बना लिया। बड़ी-बड़ी भावनाएं लेकर मैं उत्पन्न हुई और बढ़ी। जीवन सयाना होता गया और मैं सोने की लंका का स्वप्न अधिकाधिक निकट देखती गई। पर अन्त में वह सब मृग-मरीचिका की भांति लोप हो गया। फिर भी मैंने सन्तोष किया, सोचा कि मेरे लिए सब सांसारिक वस्तु अलभ्य हैं। फिर क्यों इनके पीछे जान खपाऊं। परन्तु ज्यों-ज्यों मैंने सन्तोष से काम लिया, उनकी उछृंखलता बढ़ती ही गई। कहिए तो—क्या मैं पशु हूं? मेरी इच्छाएं क्या इच्छाएं नहीं हैं? वे मुझसे ग्यारह वर्ष बड़े हैं। मैं क्या वृद्धा हूं? वे अपने रस-रंग में रहें और मैं सिपाहियों और चपरासियों से बातचीत करके दिन काटूं! यदि मैं अयोग्य हूं तो इसमें

मेरा क्या दोष है ? आपने मुझे देखा क्यों नहीं ? समझा क्यों नहीं ? लोग तो पशु को भी मनुष्य बना लिया करते हैं। आप मनुष्य को भी मनुष्य नहीं रहने दे सकते ? मैं प्रतिवर्ष प्रसूतिगृह में सड़ूं और तुम निश्चिन्त हो विचरो ! बुद्धिमानी शायद यही है ! पुरुषत्व भी यही है ! सम्भव है, प्राकृतिक नियम भी यही है। स्त्रियां केवल बच्चे पैदा करने की मशीनें हैं। मैंने आपको मन की बात बता दी, शायद ठीक नहीं किया। मैं समझती हूं आप भी उसी कट्टरपंथी धर्म के अनुगामी होंगे। मैं तो नवयुग की नवीन संस्कृति में पली हू और उसे ही मानती हू। मैं वह सर्प हूं जो चोट खाए पर बिना काटे नहीं रहता। न मैं आईना हूं जो सिर्फ सामने चमकता है और न मैं तोताचश्म हूं। फिर भी मैं सदा प्रसन्न-चित्त रहती रही। वे कभी मेरे दुःख का अनुमान भी नहीं कर सके। मैं एकान्त में रो लेती हूं, उनके सामने मैं रोना भूल जाती हूं। वे अपनी सब भूलें भोले-भाले बालक की भांति स्वीकार कर लेते हैं और विविध प्रतिज्ञा, कौल-करार करते हैं, पर ये सब बातें केवल उसी समय तक···। छोड़िए इन कहानियों को। आप तो पुरुष हैं न ? 'पर-घर' कभी रहे नहीं, पराये दिए टुकड़े और वस्त्र पाए नहीं, फिर काहे को आपके आत्मसम्मान में ठोकर लगी होगी। खैर, आप यह कहिए कि क्या आप मुझे नीरोग कर सकते हैं, और मैं साहित्य-क्षेत्र में कैसे उतर सकती हूं ? इन दो बातों में यदि आप मेरी सहायता कर देंगे, तो मैं क्लेशों से मुक्त हो जाऊंगी। आप भी यश के भागी होंगे।···के इसी अंक में 'अति प्रलाप' कविता देखिए, कैसी है ?

—शुभेच्छुका

यह सजीव और जाग्रत पत्र नारी-हृदय के विद्रोह और अहंकार से ओत-प्रोत है। यह महिला संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी की अच्छी पंडिता हैं। हिन्दी कविता सुन्दर करती हैं। पर पति महाशय

हिन्दी नहीं बोल सकते, उनकी मातृभाषा अंग्रेजी है। इसलिए 'पति-घर'—नहीं 'पर-घर'— में उन्हें अंग्रेजी ही बोलनी पड़ती है। एक उच्चकोटि के पाश्चात्य शिक्षित और उच्च पदाधिकारी युवक में जो दुर्बलताएं शिक्षा, संस्कृति तथा वातावरण के कारण होती हैं, वे सब उनमें हैं। देवीजी का यह पत्र सिर्फ अकेली उनकी आत्मा का स्वर नहीं, सहस्रों बेबस अबलाओं की विकल आत्मा का सरोष रुदन है!

इसमें तो संदेह नहीं हो सकता कि मेरे साथ प्रत्येक सहृदय पुरुष इस तेजस्विनी स्त्री के विद्रोह का अभिनन्दन करेगा, परंतु इस संबंध में कुछ गम्भीर बातें भी विचारणीय हैं, जिन पर हमें विचार करना ही चाहिए।

इस पत्र में सबसे जोरदार जो शब्द प्रयोग में लाया गया है, वह 'पर-घर' है। मैंने किसी स्त्री के मुख से पति-घर को 'पर-घर' प्रथम बार ही सुना है। प्रायः सभी जानते हैं कि स्त्री के लिए पिता का ही घर 'पर-घर' होता है। कुमारी कन्याओं के लिए भी यही कहा जाता है कि वे पराये घर की लक्ष्मी हैं। पति-घर को अपना घर कहने में स्त्रियों को बड़ा गर्व और आनन्द का अनुभव होता है। जो स्त्री पति-घर को 'पर-घर' कहे उसकी अन्तर्वेदना का अन्त नहीं और वह सर्वाधिक अनाथा और निराश्रिता है। भले ही वह पति और परिजनों से संयुक्त ही हो।

दूसरी बात जो इस पत्र में महत्त्वपूर्ण है, वह प्रसव-घटना के प्रति घृणा और तिरस्कार के भाव हैं। भारतवर्ष की स्त्रियां पुत्रवती होना अपने नारी-जीवन को धन्य होना समझती हैं। यद्यपि पति को पाकर सौभाग्यवती होना हिंदू-समाज में स्त्री का सबसे बड़ा गौरव समझा जाता है, परंतु पुत्र पाकर माता बनना स्त्री का सबसे बड़ा गौरव है। यह हिंदू ललना बड़ी ही विरक्ति और ईर्ष्या से कहती है···और मैं प्रति वर्ष सौर-गृह में सड़ूं?

तीसरी बात पत्र में पति पर लांछन है—वे मौज-बहार करते हैं, मेरी चिंता नहीं करते, मैं नौकरों के साथ बातें करके समय काटती हूं। उनकी चौथी बात मुझ पर चोट करती है। श्रद्धास्पद देवी मुझे भी सिर्फ पुरुष होने के कारण स्त्री के प्रति एक कट्टर-पंथी कहती हैं। ये चारों बातें ऐसी हैं, जिन पर मैं सार्वजनिक दृष्टि से विचार करना चाहता हूं।

'पर-घर' पर ही विचार कीजिए। भारतीय संस्कृति में हजारों वर्ष से ऐसा होता आया है कि कन्याएं न तो आजीवन कुमारी ही रह सकती हैं, न स्वतंत्र होकर किसी भी प्रकार की आजीविका ही पैदा कर सकती हैं। यद्यपि पाश्चात्य शिक्षा और विचारों के प्रभाव से आज भारतीय उच्च शिक्षा प्राप्त युवतियां कम-से-कम असाधारण देर तक अविवाहिता रहकर स्वतंत्र जीविका के कार्य करने लगी हैं। मैंने यह गम्भीरतापूर्वक देखा है कि इन स्त्रियों का पति और 'पति-घर' को छोड़कर पृथ्वी पर कहीं भी अवलम्बन नहीं है।

हिंदू धर्मशास्त्र में मनु-वर्णित आठ विवाह-पद्धतियां हैं। पहला सर्वोत्तम ब्राह्म-विवाह है, जिसमें पिता अपनी अलंकृता कन्या को वर को दान देता है। दूसरा देव-विवाह है, जिसमें यज्ञ कराने वाले पुरोहित को दक्षिणा के तौर पर कन्या-दान दिया दिया जाता है। तीसरा आर्ष-विवाह है, जिसमें कन्या का पिता एक या दो जोड़ा गाय-बैल लेकर बदले में कन्या दे दे। चौथा प्रजापत्य-विवाह है, जिसमें युवती कन्या और वर कहें कि हम दोनों साथ रहे हैं, और धर्म से पति-पत्नी हैं, उन्हें माता-पिता स्वीकार करें। पांचवां विवाह वर की जाति वालों तथा कन्याओं को धन देकर विवाह करना आसुर है। छठा गान्धर्व है, जिसमें युवती-युवक संगम करके प्रकट करें। सातवां राक्षस—जिसमें रोती-कलपती लड़की को मारकाट करके उठा ले भागें। आठवां

पैशाच—जिसमें सोती हुई, बेहोश या पागल कन्या का कौमार्य नष्ट किया जाए।

क्या आप खयाल कर सकते हैं कि यही स्त्रियों के प्रति मनुष्यत।का व्यवहार है? कन्या एक गाय-बैल के ज़ोड़े के बदले में दे दी जाए? यही उसका मूल्य है? अथवा पुरोहितों को दक्षिणा में दे डाली जाए? यह तो गुलामी से भी बढ़कर बात हुई। फिर राक्षस विवाह? इस विवाह को तो राक्षस लोग ही कर सकते हैं—मनुष्य-समाज की दृष्टि में तो यह घोर अमानुषी अपराध है। आप कह सकते हैं कि गान्धर्व विवाह में वर-वधू को स्वतन्त्रता है, परन्तु यदि आप गान्धर्व विवाह की व्याख्या वात्स्यायन काम-सूत्र में देखें तो आप समझ जाएंगे कि वह पाप और अनाचार है, विवाह नहीं। क्या आपने कभी दुष्यन्त-शकुन्तला के गान्धर्व विवाह पर भी गौर किया है, जिसे कालिदास की कोमल काव्य-कल्पना ने अमर बना दिया है। आप महाभारत में मूल आख्यान को पढ़िए। आप देखेंगे कि राजा शिकार खेलता ऋषि के आश्रम में जा निकला है। वहां ऋषि की गैरहाजिरी में ऋषि-कन्या शकुन्तला उसका आतिथ्य करती है और वह अपनी अनेक स्त्रियों के रहते भी उस कुमारी को फुसलाकर वहीं उससे व्यभिचार भी करता है और भांति-भांति के सब्ज बाग दिखाकर, जैसा बहुधा ऐसी दशा में लोग किया करते हैं, चला जाता है। पीछे जब कण्व आकर सब बात सुनते तथा लड़की को गर्भवती पाते हैं तो उसे दुष्यन्त के पास भेज देते हैं, जिसे देखकर वह घोर लम्पट की भांति उसे पहचानने से इन्कार कर देता है कि मैं तो तुझे जानता ही नहीं। पीछे वह बेचारी अपनी माता के यहां आश्रय पाती है और अन्त में जब वृद्धावस्था में राजा के कोई सन्तान नहीं होती तो वह उसे ले आता है।

आप क्या इसे पवित्र विवाह कहना चाहते हैं? स्वयम्वरों के

विधान हमें प्राचीन इतिहास में देखने को मिलते हैं। परंतु ये नाम के स्वयंवर हैं। इनमें कन्या को पति को चुनने ज़रा भी स्वातन्त्र्य नहीं, पिता एक शर्त लगाता है और जो कोई भी इस शर्त को पूरी करे, वही कन्या को वर सकता है। जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने स्वयम्वर में पिता का विरोध कर स्वाधीनता से काम लिया था। इसके लिए स्वयंवर भंग किया गया। कन्या को कैद होना पड़ा और लहू की नदियां बहीं।

हिन्दू कानून के अनुसार जब तक कन्या का विवाह नहीं हो जाता, कन्या के माता-पिता पर एक शनीचर सवार रहता है। ये लोग इस भांति वर ढूंढ़ते फिरते हैं जैसे भैंस खरीदने को लोग फिरा करते हैं। विवाह से प्रथम कन्या पराई चीज़ की भांति घर में पालन की जाती है। वह बहुत कम स्वतंत्रता पाती है। बचपन ही से उसे पति-घर की स्मृति दिलाकर त्रास दिया जाता है और विवाह होने पर फिर वह दुःखी-सुखी चाहे भी जिस तरह रहे, माता-पिता बेफ़िक्र हो जाते हैं। माता-पिता जब तक घर के अधिकारी रहते हैं, लड़की के प्रति ममता रहती है, पर भाई-भावज का राज्य होने पर फिर लड़की पिता के घर में एक बाहरी मेहमान के तौर पर आती है। उसे अपने पास से खर्च करना पड़ता है, वह आवश्यकता होने पर पति से खर्च मंगाती है, पति की अपेक्षा पिता-माता, भाई से अपनी आवश्यकता जताना संकोच की बात समझती है। बहरहाल, पति के जीते जी, पति के घर को छोड़कर उसे कहीं ठिकाना नहीं है। बहुधा स्त्रियां पति-घर में सास से लड़कर बाप के घर जाने की धमकी देती हैं, परन्तु यह उनकी अत्यन्त असहायावस्था का द्योतक है। वे दुःखी तथा अपमानित होकर, लाचार होकर ही ऐसा करती हैं। यद्यपि पिता के घर वह अधिक पराई हैं, यह वह जानती हैं। अब आप सोच सकते हैं कि जो स्त्री पति-घर को पर-घर समझे तो समझिए कि

वास्तव में उसका अपना तो कोई घर है ही नहीं, और वह बुरी-से-बुरी दशा में है।

मैं कहूंगा कि भारत में ऐसी असहाय स्त्रियां लाखों नहीं करोड़ों हैं। खासकर शिक्षित और उच्च परिवारों में यह अधिक हैं। उन्हें गहना, कपड़ा, धन सब कुछ मिलता है, पर प्रायः पति नहीं मिलता। मेरा अभिप्राय यह है कि पति को पत्नी के जितना निकट होना चाहिए, वह उतना निकट नहीं होता। इसीका यह परिणाम होता है कि सब कुछ पाकर भी पत्नी अपने को असहाय तथा गैर समझती है।

यह समझने की बात है कि पति को पत्नी और पत्नी को पति ये दो चीजें एक-दूसरे के लिए परम दुर्लभ और महामूल्यवान हैं। लाखों में एक भी पुरुष यथार्थनाम पुरुष नहीं और लाखों में एक भी स्त्री यथार्थनाम स्त्री नहीं। जो कोई भी स्त्री-पुरुष यथार्थनाम पति-पत्नी हैं, वे अपने जन्म को सफल कर चुके, उन्हें सब कुछ इहलोक और परलोक में मिल गया। पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे को प्राप्त करके फिर किसी वस्तु की चाह नहीं रख सकते। उन्हें तो जगत् का सब कुछ मिल गया। धन-सम्पदा क्या चीज है।

"टूट टाट घर, टपकत खटियो टूट।
पिय की बांह उसिसवा सुख कै लूट।"

सीता, राम के साथ वन के विकराल कष्ट सहन करती है। वह समझती है—

"जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी।
तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी।"

परन्तु जो स्त्री-पुरुष पति-पत्नी के गहन आध्यात्मिक सम्बन्ध को उत्पन्न नहीं कर सकें, उनके लिए 'पति-घर' ही 'पर-घर' नहीं, 'पति' भी 'पर-पति' है और इसी भांति पति के लिए वह स्त्री पत्नी नहीं, जी का जंजाल या पैर की बेड़ी है।

अब मैं यहां और विस्तार से इस गम्भीर विषय की व्याख्या करूंगा। स्त्री और पुरुष के शरीर की बनावट इस प्रकार की है कि दोनों को प्रतिक्षण एक-दूसरे का अभाव रहता है। स्त्री-शरीर में पुरुष का और पुरुष-शरीर में स्त्री का अभाव है। पुरुष का पुरुषत्व ही पुरुष-चिह्न है और उसका उदय स्त्री है। इसी प्रकार स्त्री का स्त्रीत्व ही स्त्री-चिह्न है और उसका उदय पुरुष है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि जगत् में स्त्री न हो तो समझिए कि किसी पुरुष में पुरुषत्व ही न रहे। इसी भांति पुरुष न हो तो स्त्री में स्त्रीत्व न रहे।

यह स्त्रीत्व और पुरुषत्व केवल शरीर ही में नहीं, अपितु जिस शरीर में आत्मा रमकर बैठी है उसमें भी स्त्रीभाव और पुरुषभाव उत्पन्न हो गया है। इसलिए जो भी स्त्री-पुरुष शरीर और आत्मा से इस प्रकार गुथकर एक हो गए हैं कि यथार्थ में अभिन्न हैं, वही पत्नी-पति हैं और ऐसी पत्नी कभी 'पति-घर' को 'पर-घर' नहीं कह सकती, न वह बिना पति के क्षणभर पृथक् रह सकती है। यही दशा पति की भी आप समझ सकते हैं।

परन्तु मैं प्रथम कह चुका हूं कि लाखों में विरले ही ऐसे स्त्री-पुरुष हैं, जो पत्नी-पति यथार्थ हैं। पृथ्वी में सच्चे प्रेमी का दर्जा सबसे ऊपर है। कहा जाता है कि सच्चा प्रेमी प्रेम-पात्र से अभिन्न रहता है, परन्तु मेरा कहना यह है कि दम्पति का दर्जा प्रेमी से बहुत बढ़कर है।

यहां मैं विवाह के गम्भीर अर्थ की थोड़ी व्याख्या करूंगा। विवाह—वि-वाह—विशेष सम्बन्ध। यह इसका शब्दार्थ है। यह विशेष सम्बन्ध स्त्रीत्व और पुरुषत्व का सम्बन्ध है, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध है। दो स्त्री-पुरुष परस्पर मिलते हैं, वे मिलते ही चले जाते हैं, अन्त में एक हो जाते हैं।

स्त्री जाति में माता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है, इसलिए

कि वह अपने शरीर में से एक नया जीवित शरीर निकालती है, जिसमें परिपूर्ण जाग्रत आत्मा का सतत निवास है। परन्तु जिस क्षण से वह शरीर माता के शरीर से पृथक् होता है—बस पृथक् ही होता जाता है। सर्वप्रथम वह एक अति सूक्ष्म रजकण है, फिर वह माता के रक्त को पान करके वृद्धिगत होता है। वह पिता की मेधा-प्रतिभा और ओज तथा स्थैर्य पाता है और माता का स्वभाव, हृदय और भाव। जब वह परिपूर्ण हो जाता है, उसका हृदय स्पन्दित होने लगता है और प्रसव के बाद उसका एक अलग अस्तित्व हो जाता है। ज्यों-ज्यों वह बालक बड़ा होता है, वह बाह्य संसार में प्रविष्ट होता जाता है। माता से प्रतिक्षण वह दूर ही रहता है। अन्त में केवल श्रद्धा और आदर ही माता की सम्पत्ति रह जाती है, परन्तु जब वह अपने जीवन के पूर्ण ओज को पहुंचता है अर्थात् युवक होता है, तब एक स्त्री उसे पत्नी के रूप में मिलती है। वह बिल्कुल अपरिचित है, भिन्न कुल और गोत्र की है। परन्तु पत्नी होने के बाद वह प्रतिक्षण उसके निकट आती है। और वह निकट ही नहीं, प्रत्युत दोनों परस्पर एक-दूसरे में प्रविष्ट होते हैं—न केवल शरीर से, प्रत्युत आत्मा से भी। आज जगत् में ऐसे करोड़ों उदाहरण हैं कि पति-पत्नी के सम्बन्ध के आगे माता-पिता तक त्यागे जाते हैं, सब कोई ग़ैर बन जाते हैं। इस मिथुन सहयोग में जो वैज्ञानिक और प्राकृतिक आकर्षण है और उसका मध्यस्थ जो चरम श्रेणी के आनन्द का परस्पर संयुक्त आदान-प्रदान है, वह उन्हें बाह्य संसार से लगभग अन्धा बना देता है। अब तक वे एक होने पर भी दो थे। उनके प्राण एक थे, पर शरीर दो थे। अब दोनों जब गर्भ-स्थापना करते हैं, तो वे अन्तिम श्रेणी में पुत्र के रूप में एकीभूत होते हैं, उस सन्तान के रूप में दोनों संयुक्त हैं, जिसमें दोनों का एक प्राण, एक शरीर है।

यह दम्पति का महत्त्व है। इसी कारण विवाह की मर्यादा

तथा धूमधाम पृथ्वी की सब जातियों में सब उत्सवों की अपेक्षा ज़्यादा प्रधान है।

अब मैं फिर उस पत्र के विषय पर आता हूं। पत्र लिखने वाली महिला जहां 'पति-घर' को विरक्ति से 'पर-घर' कहती हैं, वहां वे प्रसव-घटना के प्रति घृणा और रोष का भाव भी रखती हैं।

यद्यपि हमारा देश दरिद्र है और जितना कम हम संतान उत्पन्न करें उतना ही अच्छा है, परन्तु मैं दृढ़तापूर्वक यह कहूंगा कि स्त्री का स्त्रीत्व, सौभाग्य-शोभा एवं जीवन का साफल्य प्रसव ही में है। स्त्रीत्व के नाते पत्नी बनना तो उसकी चरम स्वार्थ-सिद्धि है। माता बनना परम पुरुषार्थ कहना चाहिए। यदि स्त्रियां मातृ-पद से घृणा करने लगें तो मैं कहूंगा कि स्त्रियां फिर अपनी सब श्रद्धा और पवित्रता तथा गौरव खो देंगी। मैं इस बात पर बहस नहीं करता कि फिर सृष्टि कैसे चलेगी। कल्पना कर लीजिए कि बच्चे मशीनों से विज्ञान द्वारा बनने लगेंगे। परन्तु मेरा कहना तो यह है कि मातृत्व, स्त्री जाति का एक ऐसा अस्तित्व है कि जिसके बल पर स्त्री जाति सदैव पूजी जाती रहेगी। यदि स्त्री में से मातृत्व निकाल दिया जाए, तो फिर समझिए कि वह स्वर्ग से च्युत हो गई। बिना सन्तान पुरुष अपने गौरव की रक्षा कर सकता है, स्त्री नहीं। मैं आपको वेश्याओं की मिसाल दूंगा। वेश्या जाति को स्त्रियां मातृ-पद से वंचित अभागिनी स्त्रियां हैं। यद्यपि वे भी सन्तान प्रसव करती हैं। पर उन्हें माता पद प्राप्त नहीं है। माता पद उन्हीं को प्राप्त होगा, जिन्हें पति प्राप्त है और धर्मतः दम्पति हैं। वेश्याएं दम्पति नहीं, पत्नी नहीं। उनका स्त्रीत्व और पुरुषत्व से मुक्त सहवास है। वह अस्थायी है और धन उसका प्रधान माध्यम है। इसलिए वेश्या जब अपने यौवन को समाप्त कर चुकती है, तब वह सब प्रतिष्ठा और गौरव से

पतित हो जाती है, उसे कुटनी पद मिलता है और उसकी वृद्धा-वस्था उसकी युवावस्था की अपेक्षा अधिक पापमय हो जाती है।

परन्तु दम्पति-धर्म में दीक्षा प्राप्त स्त्री ज्यों-ज्यों यौवन से ढलती है, पुत्र, पौत्र, परिजनों से संयुक्त रहती है! पवित्रता, श्रद्धा, सम्मान और गौरव की पद-पद पर वृद्धि पाती है, पुरुषों से कहीं अधिक स्त्रियों का आदर होता है। कुपुत्र भी माता की ओर सदा झुकता है। माता बनकर ही स्त्रियां जीवन का ध्येय पाती हैं। इसलिए जो स्त्री मातृपद से घृणा करे, उस स्त्री के दुर्भाग्य पर हमें दया करनी ही चाहिए। जो सौभाग्यवती स्त्री कोखवती नहीं, प्रसव की अधिकारिणी नहीं—वह स्त्री नहीं, स्त्रीत्व से हीन एक मांस-पिण्ड है। प्रत्येक स्त्री को जानना चाहिए कि उसके विवाह का उद्देश्य भोग-विलास नहीं। मैं कह चुका हूं, यह सब तो उस मूल आवश्यकता का आकर्षण है, मूल वस्तु पुत्र प्रसव है। स्त्री जाति पुत्र प्रसव करके ही पत्नी, माता, स्वामिनी सब कुछ बनती है और इसीसे उसका स्त्रीत्व धन्य होता है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि क्या कारण है कि कोई सुशिक्षिता, पुत्रवती, कोमल-हृदया नारी पति से और 'पति-घर' से तथा मातृपद से इतनी घृणा करे, पुरुष तक से प्रतिस्पर्धा रक्खे। यह तो है ही कि स्त्रियां स्त्रियां रहेंगी, पुरुष नहीं बन सकतीं, और पुरुष पुरुष ही रहेंगे, स्त्रियां नहीं बन सकते। इन महिला ने मुझे भी कट्टरपन्थी बताया है, सो तो सही है। मैं स्त्रियों को पुरुषोचित कामों में लाना बेवकूफी समझता हूं। मैं तो स्त्रियों को स्त्री ही रखना चाहता हूं। पुरुष और स्त्रियों के काम, स्वभाव, शरीर, सम्पत्ति, सब कुछ अलग है और उसीके अनुकूल दोनों को संसार-यात्रा करनी चाहिए। कलम लिखने के लिए है, और सूई सीने के लिए। यदि सूई से लिखेंगे और कलम से सीएंगे तो बन नहीं सकेगा। आप कह सकते हैं कि स्त्री-पुरुष समान हैं,

दोनों के शरीर और आत्मा समान हैं, मैं कहूंगा हरगिज़ नहीं। स्त्री-पुरुष कभी समान नहीं। दोनों सदा असमान रहेंगे। और उनके समान बनने की चेष्टा करना संसार में आफत लाने का कारण होगा। यहां मैं यह नहीं कहता कि स्त्री छोटी और पुरुष बड़ा है। स्त्री तुच्छ और पुरुष श्रेष्ठ है। मैं तो केवल यह कहता हूं कि दोनों पृथक् वस्तु हैं—अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक का महत्त्व है। उसी स्थान पर प्रत्येक को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

उपर्युक्त पत्र में दो बातें मुझे मालूम पड़ीं। एक यह कि ये आदरणीय महिला अपने दिमाग में उस पश्चिमी जहरीली हवा को थोड़ा-बहुत भरे हुए हैं जो स्त्री जाति को असहाय बना रही है। हम क्यों पुरुष के अधीन रहें, क्यों प्रसव करें, इससे स्वास्थ्य और यौवन नष्ट होता है, चें-पें पल्ले बंधती है। हमारा विवाह का उद्देश्य यह है कि पति रुपये का ढेर कमाकर हमें दे। मोटर हो, बंगला हो, पति प्रतिक्षण पालतू कुत्ते की भांति दुम हिलाता हमारे चारों तरफ जिमनास्टिक के जैसी कसरत करता रहे, रंग-बिरंगी साड़ी लाए, पहनाकर देखे। इसके बाद सब दरवाजे बन्द करके गड़प अन्धकारपूर्ण कमरे में दोनों परस्पर के शरीर और प्रेम को खूब खाएं और जो बचे, सो बिखेरें। स्त्रियां समझती हैं कि पति के रत्ती-रत्ती प्रेम पर, शरीर पर, सम्पत्ति पर, सर्वस्व पर, सिर्फ हमारा ही अधिकार है।

मैं स्त्रियों के इस पागलपन के दावे को कतई खारिज करता हूं। पहली बात तो यह है कि पति-पत्नी को अपना सम्पूर्ण प्रेम एक-दूसरे ही में नही खर्च करना होगा, उसके दावेदार, हिस्सा बटाने वाले और भी हैं। गृहस्थ एक वृक्ष है, जिसमें सैकड़ों शाखाएं और फल हैं, दम्पति सबका केन्द्र है। स्त्री और पुरुष को मिलकर अपना सर्वस्व का भाग परिजनों को भी देना है, देश और मनुष्य

जाति का भी उसमें हिस्सा है। उदार भाव और उदार जीवन यदि स्त्री न बना सके तो वह दम्पति-धर्म से च्युत हो जाती है। स्त्रियों का जीवन-संसार घर है। पुरुषों का बाह्य संसार है। पुरुष बाह्य संसार से सम्पदा हरण करके घर में लाता है। स्त्री का काम उसका संचय और सदुपयोग करना है। हिटलर ने अपने देश की स्त्रियों से कहा था कि—विज्ञान और मशीनरी ने १०० पुरुषों का काम १० आदमियों द्वारा होना सम्भव कर दिया है। इससे हमारे ६० आदमी बेकारी में फंस रहे हैं, जो हमारे राष्ट्र की बड़ी भारी चिन्ता का विषय है। अब यदि स्त्रियां भी पुरुषोचित कामों को करके उन १० में हिस्सा बटाएंगी तो हम किसी भी हालत में सार्वजनिक बेकारी का मुक़ाबला नहीं कर सकेंगे। इसलिए मैं अपनी माताओं और बहनों को सलाह देता हूं कि वे दफ्तरों, कार्यालयों और बाज़ारों से हट जाएं। वे अपने घरों को संभालें, बच्चों की परवरिश करें, थके और चिन्तित पतियों पर आराम और प्रेम की वर्षा करें, जिससे यह संसार हम पुरुषों के लिए, जो सदैव विपरीत भाग्य से युद्ध करने के लिए बने हैं, आनन्द और आशा का संसार बन जाए।

मैं कहूंगा कि ये स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने वाले शब्द यूरोप की एक बड़ी भारी ग़लती को सुधारने वाले हैं, जिसके कारण यूरोप का दाम्पत्य जीवन अविश्वस्त, असुखी तथा अस्त-व्यस्त बन गया है।

पाश्चात्य स्वाधीनता की यह लहर शिक्षा के साथ हमारी बहन-बेटियों के मस्तिष्क में घर कर गई है। इससे वे प्राय: पतियों से विद्रोह करने लगती हैं। मेरा कहना है कि कोई स्त्री पुरुष के अधीन नहीं, पति के अधीन है। पर सोचना चाहिए कि क्या पति उसके अधीन नहीं है। यह तो प्रेम की अधीनता है। यह अधीनता गुलामी नहीं, यह तो हृदय की सर्वाधिक कोमलता है।

अब रही अन्तिम बात। वह यह कि पति मर्यादा से बाहर मौज-बहार करता है, तथा पत्नी को घर में कैदी बनाकर डाल दिया है। वह नौकर-चाकरों में दिन काटती है। मैं तसलीम करता हूं कि पुरुष ऐसे आवारागर्द हो जाते हैं और उनके लिए स्त्रियों को दृढ़तापूर्वक मुकाबले को तैयार हो जाना चाहिए। जिस प्रकार जमीन-जायदाद पर अधिकार पाने के लिए लोग खूब लड़ते हैं, स्त्रियों को भी खूब लड़ना चाहिए। पर 'पर-घर' तो नहीं कहना चाहिए। जो स्त्री 'पति-घर' को 'पर-घर' कहेगी, वह लड़ेगी किस अधिकार से ? प्रथम उसे 'अपना घर' 'अपना पति' बनाना, पीछे यदि अनाचार दीखे तो युद्ध ठान देना। पर प्रश्न यह है कि—प्रथम उसे अपना लेना—यह स्त्री जाति के लिए बड़ी भारी तपस्या है। प्राय: पढ़ी-लिखी स्त्रियां ऐसा नहीं कर सकतीं। वे न पति की सेवा करती हैं, न बच्चों की। पति को वश में करने के लिए वे केवल शृंगार-पिटार काफी समझती हैं और बच्चों को नौकरों के सुपुर्द करना। बहुधा ऐसी ही स्त्रियों के पति आवारा-गर्द होते हैं। वास्तव में पत्नी का सबसे बड़ा गुण विनय और सेवा है। पुरुष तो क्या, हिंसक जन्तु भी उससे वश में होते हैं। महर्षि वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में पत्नी के गुण इस भांति लिखे हैं—

पति को देव-समान आदरणीय समझे, उसकी सम्पति से परिवार और गृहस्थ का संचालन करे, सदा पवित्र वेश धारण करे। घर को फुलवारी और विविध वस्तुओं से सजाए, परिजन, अतिथि, पति के मित्र आदि का यथावत् सत्कार करे, घर के आंगन में तरकारी बो दे, फल के वृक्ष लगाए, फलों का सदुपयोग करे। ऋतु, देश, काल और घर के मनुष्यों की मरजी के अनुकूल भांति-भांति के स्वादिष्ट भोजन बनाए। पति को बाहर से आया जान, प्रेम और आदर से घर में सत्कार करे। सेवकों और दासियों के रहते भी स्वयं पति की सेवा करे। पिता के घर या सम्बन्धियों

के यहां उत्सव आदि में बड़ी-बूढ़ियों के साथ जाए। पति के प्रथम जागे और पीछे सोए। बिना खास काम के सोते पति को न जगाए। भण्डार आदि को खूब सजाए, पशु-पक्षी आदि का प्रेम से पालन करे, पर-पुरुष सम्बन्धी से भी एकान्त में बातचीत न करे। शरीर को दुर्गन्धित न होने दे, आभूषण, फूल आदि उपयुक्त ही धारण करे, अधिक नहीं। घर-गृहस्थ की सब चीजों को फसल में संग्रह करके रख ले, किसी चीज को खराब न जाने दे। हिसाब-किताब आदि ठीक-ठीक रखे। सेवकों को समय पर वेतन, भोजन देकर संतुष्ट रखे। अचार, मुरब्बे, सिरका, आसव आदि सब कुछ निर्माण करे। इन गुणों से स्त्री पति की अनुरक्ता हो जाती है।

संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि स्त्रियों को पति और पति-घर से पूरी ममता, प्रेम और आत्मीयता रहनी चाहिए। उस घर और घर से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तु की रक्षा और पालन का ध्यान रखना चाहिए। जिस प्रकार बीज गलकर वृक्ष उगता है, उसी भांति गृहस्थ के खेत में स्त्री को गल जाना चाहिए। उस गृहस्थ से भिन्न उसका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं रहना चाहिए। स्त्री को सब परिस्थितियों को युक्ति और अध्यवसाय से अनुकूल और सौम्य बनाकर अपना जन्म धन्य करना चाहिए।

पति या घर का कोई भी व्यक्ति, चाहे वे सास-ससुर, गुरुजन ही क्यों न हों, कोई अनाचार करे तो तुरन्त वीरतापूर्वक अन्त-युद्ध छेड़ देना चाहिए और वह उस समय तक बन्द न किया जाना चाहिए, जब तक कि विरोध के कारण जड़मूल से नष्ट न हो जाएं।

अपने प्रियजनों से युद्ध करना शत्रु से युद्ध करने की अपेक्षा भिन्न वस्तु है। शत्रु से युद्ध तो शत्रु को नष्ट करने के विचार से किया जाता है, परन्तु अपने प्रियजनों से युद्ध का अभिप्राय यह होता है कि दोनों में जो भिन्नता या विरोध है—जिससे विश्वास

और प्रेम की लता सूखती है—वह नष्ट हो जाए, दोनों एक हो जाएं। एक रस, एक प्राण, एकीभूत। इस अन्तर्युद्ध में जो कायर बने, जो तरह दे, जो ढील छोड़े, वह अपने ही घर का—जीवन की शान्ति का—शत्रु है।

हां, मैं कहूंगा कि यदि अपराध करने पर पति को डांटना पड़े तो अवश्य डांटना चाहिए। यद्यपि डांटना घृणास्पद चीज है, पर लोग स्त्रियों को डांटते हैं। बच्चों को भी डांटते हैं—जब तक डांटना दण्ड के विधान में जारी है। घोर अपराध—जैसे शराब, जुआ, व्यभिचार, धूर्तता, क्रूरता आदि—के बदले पति को डांटना, भोजन बन्द कर देना, आवश्यक है। सुखी परिवार में पति-पत्नी दोनों परस्पर विश्वास, प्रेम और आदर भाव रखें। दोनों अपने कर्त्तव्य में दृढ़ रहें। आवश्यकता पड़ने पर दोनों, दोनों को सीमित-संयमित रखने में समर्थ रहें। यही दाम्पत्य जीवन में सुख-शांति देने वाली बात है, अपने घर को 'पर-घर' बनाने से काम नहीं चलेगा।

—चतुरसेन

माया भरी बैठी थी। मास्टर हरप्रसाद ने ज्योंही घर में कदम रखा, उसने विषदृष्टि से पति को देखकर तीखे स्वर में कहा—'यह अब तुम्हारे आने का समय हुआ है ? इतना कह दिया था कि आज मेरा जन्मदिन है, चार मिलने वालियां आएंगी, बहुत कुछ बन्दोबस्त करना है, ज़रा जल्दी आना। सो, उल्टे आज शाम ही कर दी।'

'पर लाचारी थी प्रभा की मां, देर हो ही गई !'

'कैसे हो गई ? मैं कहती हूं, तुम मुझसे इतना जलते क्यों हो ? इस तरह मन में आंठ-गांठ रखने से फायदा ? साफ क्यों नहीं कह देते कि तुम्हें मैं फूटी आंखों भी नहीं सुहाती !'

'यह बात नहीं है प्रभा की मां, तनख्वाह मिलने में देर हो गई। एक तो आज इन्स्पेक्टर स्कूल में आ गए, दूसरे आज फीस का हिसाब चुकाना था, तीसरे कुछ ऑफिस का काम भी हैडमास्टर साहब ने बता दिया—सो करना पड़ा। फिर आज तनखाह मिलने का दिन नहीं था—कहने-सुनने से हैडमास्टर ने बन्दोबस्त किया।'

'सो उन्होंने बड़ा अहसान किया। बात करनी भी तुमसे आफत है। मैं पूछती हूं कि देर क्यों कर दी— आप लगे आल्हा गाने। देखूं, रुपये कहां हैं ?'

मास्टर साहब ने कोट अभी-अभी खूंटी पर टांगा ही था, उसके जेब से पर्स निकालकर आंगन में उलट दिया। दस-दस रुपये के चार नोट जमीन पर फैल गए। उन्हें एक-एक गिनकर माया ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—'चालीस ही हैं, बस ?'

'चालीस ही पाता हूं, ज्यादा कहां से मिलते ?'

'अब इन चालीस में क्या करूं ? ओढ़ूं या बिछाऊं ? कहती हूं, छोड़ दो इस मास्टरी की नौकरी को, छदाम भी तो ऊपर की आमदनी नहीं है। तुम्हारे ही मिलने वाले तो हैं वे बाबू तोताराम —रेल में बाबू हो गए हैं। हर वक्त घर भरा-पूरा रहता है। घी में घी, चीनी में चीनी, कपड़ा-लत्ता, और दफ्तर के दस कुली चपरासी—हाज़िरी भुगताते हैं वह जुदा। वे क्या तुमसे ज्यादा पढ़े हैं ? क्यों नहीं रेल-बाबू हो जाते ?'

'वे सब तो गोदाम से माल चुराकर लाते हैं प्रभा की मां। मुझसे तो चोरी हो नहीं सकती। तनखाह जो मिलती है, उसीमें गुजर-बसर करनी होगी।'

'करनी होगी, तुमने तो कह दिया। पर इस महंगाई के जमाने में कैसे ?'

'इससे भी कम में गुज़र करते हैं लोग प्रभा की मां।'

'वे होंगे कमीन, नीच। मैं ऐसे छोटे घर की बेटी नहीं हूं।'

'पर अपनी औकात के मुताबिक ही तो सबको अपनी गुजर-बसर करनी चाहिए। इसमें छोटे-बड़े घर की क्या बात है ? अमीर आदमी ही बड़े आदमी नहीं होते, प्रभा की मां।'

'ना, बड़े आदमी तो तुम हो, जो अपनी जोरू को रोटी-कपड़ा भी नहीं जुटा सकते। फिर तुम्हें ऐसी ही किसी कछारिन-महरिन से ब्याह करना चाहिए था। तुम्हारे घर का धन्धा भी करती, इधर-उधर चौका-बरतन करके कुछ कमा भी लाती। बी० ए० एम० ए० होते तो वह भी बी० ए०-एम० ए० आ जाती और दोनों ही बाहर मजे करते। क्या जरूरत थी गृहस्थ बसाने की ?'

मास्टर साहब चुप हो गए। वे पत्नी से विवाद करना नहीं चाहते थे। कुछ ठहरकर उन्होंने कहा—'जाने दो प्रभा की मां, आज झगड़ा मत करो।' वे थकित भाव से उठे, अपने हाथ से एक

गिलास पानी उंड़ेला और पीकर चुपचाप कोट पहनने लगे। वे जानते थे कि आज चाय नहीं मिलेगी। उन्हें ट्यूशन पर जाना था।

माया ने कहा—'जल्दी आना, और टयूशन के रुपये भी लेते आना।'

मास्टरजी ने विवाद नहीं बढ़ाया। उन्होंने धीरे से कहा—'अच्छा !' और घर से बाहर हो गए।

बहुत रात बीते जब वे घर लौटे तो घर में खूब चहल-पहल हो रही थी। माया की सखी-सहेलियां सजी-धजी गा-बजा रही थीं। अभी उनका खाना-पीना नहीं हुआ था। माया ने बहुत-सा सामान बाजार से मंगा लिया था। पूड़ियां तली जा रही थीं और घी की सौंधी महक घर में फैल रही थी।

पति के लौट आने पर माया ने ध्यान नहीं दिया। वह अपनी सहेलियों की आवभगत में लगी रही। मास्टर साहब बहुत देर तक अपने कमरे में पलंग पर बैठे माया के आने और भोजन करने की प्रतीक्षा करते रहे, और न जाने कब सो गए।

प्रातः जागने पर माया ने पति से पूछा—'रात को भूखे ही सो रहे तुम, खाना नही खाया ?'

'कहां, तुम काम में लगी थीं, मुझे पड़ते ही नींद आई तो फिर आंख ही नहीं खुली।'

'मैं तो पहले ही जानती थी कि बिना इस दासी के लाए तुम खा नहीं सकते। रोज ही चाकरी बजाती हूं। एक दिन मैं तनिक अपनी मिलने वालियों में फंस गई तो रूठकर भूखे ही सो रहे। सो एक बार नहीं सौ बार सो रहो, यहां किसीकी धौंस नहीं सहने वाले हैं।'

'नहीं प्रभा की मां, इसमें धौंस की क्या बात है ? मुझे नींद आ ही गई।'

'आ गई तो अच्छा हुआ, अब महीने के खर्च का क्या होगा ?'

'ट्यूशन ही के बीस रुपये जेब में पड़े हैं, उन्हीं में काम चलाना होगा।'

'ट्यूशन के बीस रुपये ? वे तो रात काम में आ गए। मैंने ले लिए थे।

'वे भी खर्च कर दिए ?'

'बड़ा कसूर किया, अभी फांसी चढ़ा दो।'

'नहीं, नहीं, प्रभा की मां, मेरा ख्याल था—चालीस रुपयों में तुम काम चला लोगी, बीस बच रहेंगे। इससे दब-भींचकर महीना कट जाएगा।'

'यह तो रोज का रोना है। तकदीर की बात है, यह घर मेरी ही फूटी तकदीर में लिखा था। पर क्या किया जाए, अपनी लाज तो ढकनी ही पड़ती है। लाख भूखे-नंगे हों, परायों के सामने तो नहीं रह सकते। वे सब बड़े घर की बहू-बेटियां थीं, कोई खटीक-चमारिन तो थीं ही नहीं। फिर साठ-पचास रुपये की औकात ही क्या है ?'

मास्टर साहब चिन्ता से सिर खुजलाने लगे। उन्हें कोई जवाब नहीं सूझा। महीने का खर्च चलेगा कैसे, यही चिन्ता उन्हें सता रही थी। अभी दूध वाला आएगा, धोबी आएगा। वे इस माह में जूता पहनना चाहते थे—बिलकुल काम लायक न रह गया था। परन्तु अब जूता तो एक ओर रहा, अन्य आवश्यक खर्च की चिन्ता सवार हो गई।

पति को चुप देखकर माया झटके से उठी। उसने कहा—'अब इस बार तो कसूर हो गया भई, पर अब किसीको न बुलाऊंगी। इस अभागे घर में तो पेट के झोले को भर लिया जाए, तो ही बहुत है।'

उसने रात का बासी भोजन लाकर पति के सामने रख दिया।

मास्टर साहब चुपचाप खाकर स्कूल को चले गए।

माया ने कहा—'बिना कहे तो रहा नहीं जाता—अब तेली, तम्बोली, दूधवाला आकर मेरी जान खाएंगे तो? तुम्हें तो अपनी इज्जत का ख्याल ही नहीं, पर मुझसे तो इन नीचों के तकाजे नहीं सहे जाते!'

मास्टरजी ने धीमे स्वर में नीची नजर करके कहा—'करूंगा प्रबन्ध, जाता हूं।'

२

आजाद महिला-संघ की अध्यक्षा श्रीमती मालतीदेवी चालीस साल की विधवा थीं। अपने पति महाशय के साथ उन्होंने तीन बार सारे योरोप में भ्रमण किया था। वह योरोप की तीन-चार भाषाएं अच्छी तरह बोल सकती थीं। उनका स्वास्थ्य और शरीर का गठन बहुत अच्छा था। चालीस की दहलीज पर आने पर भी वे काफी आकर्षक थीं। मिलनसार भी वे काफी थीं। पति की बहुत बड़ी सम्पत्ति की वे स्वतन्त्र मालकिन थीं। विदेश में स्त्रियों की स्वाधीनता को देखकर उन्होंने भारत की सारी स्त्रियों को स्वाधीन करने का बीड़ा उठाया था। और भारत में आते ही आजाद महिला-संघ का सूत्रपात आरम्भ कर दिया था। इस आन्दोलन से उनकी जान-पहचान बहुत बड़े-बड़े लोगों से तथा परिवारों में हो गई थी। उनकी बातें और बात करने का ढंग बड़ा मनोहर और आकर्षक था। दांतों की बतीसी यद्यपि नकली थी, पर जब वे अपनी मादक हंसी हंसती थीं तब आदमी का दिल बेबस हो ही जाता था। भिन्न-भिन्न प्रकृति और स्थिति के

व्यक्तियों को मोहकर उन्हें अपने अनुकूल करने की विद्या में वे खूब सिद्धहस्त थीं।

मायादेवी की एक सहेली ने उनसे मायादेवी का परिचय कराया था। मायादेवी मालतीदेवी पर जी-जान से लहालोट थी। वह हर बात में उन्हें आदर्श मान उन्हीं के रंग-ढंग पर अपना जीवन ढालती जाती थी। परन्तु, मालतीदेवी के समान न तो वह विदुषी थी, न स्वतन्त्र। उसके पति की आमदनी भी साधारण थी। अतः ज्यों-ज्यों मायादेवी मालती की राह चलती गई, त्यों-त्यों असुविधाएं उसकी राह में बढ़ती गईं, खर्च और रुपये-पैसे के मामले में उसका बहुधा पति से झगड़ा होने लगता। उसका अधिक समय आजाद महिला-संघ में, मालतीदेवी की मुसाहिबी में, गुजरता। घर से प्रायः वह बाहर रहती। इससे उनकी घर-गृहस्थी बिगड़ती चली गई। परन्तु जब उसके बढ़े हुए खर्चे में पति की सारी तनख्वाह भी खत्म होने लगी और रोज के खर्चे का झंझट बढ़ने लगा तब तो मास्टर जी का भी धैर्य छूट गया। और अब असन्तोष और गृह-कलह ने बुरा रूप धारण कर लिया। परन्तु पति के सौजन्य और नर्मी का मायादेवी गलत लाभ उठाती चली गई। उसकी आवारागर्दी, बेरुखाई, फजूलखर्ची और विवाद की भावनाएं बढ़ती ही चली गईं। उसे कर्ज लेने की भी आदत पड़ गई।

एक दिन मायादेवी ने मालतीदेवी से कहा—'श्रीमती मालतीदेवी, मैं आपका परामर्श चाहती हूं। मैं अपने इस जीवन से ऊब गई हूं। आप मुझे सलाह दीजिए, मैं क्या करूं।'

मालती ने उससे सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा—'मेरी तुमसे बहुत सहानुभूति है, और मैं तुम्हारी हर तरह सहायता करने को तैयार हूं।'

'तो कहिए—मैं कब तक इन पुरुषों की गुलामी करूं।'

'मत सहन करो बहिन, पच्छिम से तो स्वाधीनता का सूर्य

उदय हुआ है। तुम स्वाधीन जीवन व्यतीत करो। जीवन बहुत बड़ी चीज है, उसे यों ही बर्बाद नहीं किया जा सकता।

'इन पुरुषों की प्रभुता का जुआ हमें अपने कंधे पर से उतार फेंकना होगा, हमें स्वतन्त्र होना होगा। हम भी मनुष्य हैं—पुरुषों की भांति। कोई कारण नहीं जो हम उनके लिए घर-गिरस्ती करें, उनके लिए बच्चे पैदा करें और जीवनभर उनकी गुलामी करती हुई मर जाएं!'

'यही मैं कहती हूं और यही चाहती भी हूं, पर समझ नहीं पा रही कि हूं कैसे अगला कदम उठाऊं।'

'तुम आजाद महिला-संघ की सदस्या हो। तुम्हारे बिचार बड़े सुन्दर हैं, संघ तुम्हें सब तरह से मदद करेगा। वह तुम्हें जीवन देगा, मुक्ति देगा। जिसका हमें जन्मसिद्ध अधिकार है, वह हमें संघ में मिल सकता है।'

'देखिए, वे स्कूल चले जाते हैं, तो मैं दिनभर घर में पड़ी-पड़ी क्या उनका इन्तजार करती रहूं या उनके बच्चे की शरारत से खीझती रहूं। यह तो कभी आशा ही नहीं की जा सकती कि वे मेरे लिए कोई साड़ी लाएंगे या कोई गहना बनवाएंगे। आएंगे भी तो गुमसुम, उदास मुंह बनाए। आदमी क्या हैं बीसवीं सदी के कीड़े हैं। मालतीदेवी, क्या कहूं। उन्होंने कुछ ऐसी ठण्डी तबीयत पाई है कि क्या कहूं। मुझे तो अपनी मिलने वालियों में उन्हें अपना पति कहने में शर्म लगती है।'

'हिन्दुस्तान में हजारों स्त्रियों की दशा तुम्हारी ही जैसी है बहिन। इससे उद्धार होने का उपाय स्त्रियों का साहस ही है।'

'मैं तो अब इस जीवन से ऊब गई हूं। भला यह भी कोई जीवन है?'

'अपने आत्मसम्मान की, अधिकारों की, स्वाधीनता की रक्षा करो।'

'परन्तु किस तरह, कैसे मैं इस बन्धन से मुक्ति पा सकती हूं।'

'हिन्दू कोडबिल तुम्हारे लिए आशीर्वाद लाया है, नई जिन्दगी का संदेश लाया है। यह तुम्हारी ही जैसी देवियों के पैरों में पड़ी परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने के लिए है। इससे तुम लाभ उठाओ।'

माया की आंखें चमकने लगीं। उसने कहा--'यही तो मैं भी सोचती हूं श्रीमती जी। आपही कहिए, चालीस रुपये की नौकरी, फिर दूध धोए भी बना रहना चाहते हैं। आप ही कहिए, दुनिया के एक कोने में एक-से-एक बढ़कर भोग हैं, क्या मनुष्य उन्हें भोगना न चाहेगा ?'

'क्यों नहीं, फिर वे भोग बने किसके लिए हैं ? मनुष्य ही तो उन्हें भोगने का अधिकार रखता है।'

'यही तो'। पर पुरुष ही उन्हें भोग पाते हैं। वे ही शायद मनुष्य हैं, हम स्त्रियां जैसे मनुष्यता से हीन हैं।'

'हमें लड़ना होगा, हमें संघर्ष करना होगा। हमें पुरुषों की बराबर का होकर जीना होगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने यह आजाद महिला-संघ खोला है। तुम्हें चाहिए कि तुम इसमें सम्मिलित हो जाओ। इसमें हम न केवल स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाते हैं, बल्कि स्त्रियों को स्वावलम्बी रहने के योग्य भी बनाते हैं। हमारा एक स्कूल भी है, जिसमें सिलाई, कसीदा और भांति-भांति की दस्तकारी सिखाई जाती है। गान-नृत्य के सीखने का भी प्रबन्ध है। हम जीवन चाहती हैं, सो हमारे संघ में तुम्हें भरपूर जीवन मिलेगा।'

'तो मैं श्रीमतीजी, आपके संघ की सदस्या होती हूं। जब ये स्कूल चले जाते हैं मैं दिनभर घर में पड़ी ऊब जाती हूं। यह भी नहीं कि वे मेरे लिए कुछ उपहार लेकर आते हों या

मेरे पास बैठकर दो बोल हंस-बोल लें। ईश्वर जाने कैसी ठण्डी तबियत पाई है। चुपचाप आते हैं, थके हुए, परेशान-से, और पूरे सुस्ता नहीं पाते कि ट्यूशन। प्रभा है, उनकी लड़की, उसीसे रात को हंसते-बोलते हैं। कहिए, यह कोई जीवन है ? नरक, नरक सिर्फ मैं हूं जो यह सब सहती हूं।'

'मत सहो, मत सहो बहिन, अपने आत्मसम्मान और स्वाधी-नता की रक्षा करो।'

'यही करूंगी श्रीमती जी। परन्तु हमारा सबसे बड़ा मुकाबला तो हमारी पराधीनता का है, माना कि कानून का सहारा पाकर हम वैवाहिक बन्धनों से मुक्त हो जाएं, परन्तु हम खाएंगी क्या ? रहेंगी कहां ? करेंगी क्या ? हम स्त्रियां तो जैसे कटी हुई पतंग हैं, हमारा तो कहीं ठौर-ठिकाना है ही नहीं।'

"उसका भी बन्दोबस्त हो सकता है। पहिली बात तो यह है कि हिन्दू कोड बिल जब तुम्हें मुक्तिदान देगा तो तुम्हारे सभी बन्धन खोल देगा। तुम्हें सब तरह से आजाद कर देगा। पहले तो हिन्दू स्त्रियां पति से त्यागी जाकर पति से दूर रहकर भी विवाह नहीं कर सकती थीं, परन्तु अब तो ऐसा नहीं है। तुम मन चाहे आदमी से शादी कर सकती हो। अपनी नई गृहस्थी बना सकती हो, अपना नया जीवन-साथी चुन सकती हो। इसके अतिरिक्त तुम पढ़ी-लिखी सोशल महिला हो, तुम्हें थोड़ी भी चेष्टा करने से कहीं-न-कहीं नौकरी मिल सकती है। तुम बिना पति की गुलाम हुए, बिना विवाह किए, स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकती हो।'

'तो श्रीमती मालतीदेवी, क्या आप मेरी सहायता करेंगी ? क्या आपके आसरे मैं साहस करूं ? मैं तो बहुत डरती हूं। समझ नहीं पाती, क्या करूं।'

"आरम्भ में ऐसा होता है, पर बिना साहस किए तो पैर की

बेड़ी कटती नहीं बहिन ! तुम जब तक स्वयं अपने पैरों पर खड़ी न होगी तब तक दूसरा कोई तुम्हें क्या सहारा देगा ?'

'तो आप बचन देती हैं कि आप मेरी मदद करेंगी ?'

'जरूर करूंगी।'

'लेकिन कानूनी झंझट का क्या होगा ?'

'मेरे एक परिचित वकील हैं, मैं तुम्हें उनके नाम परिचय-पत्र दे दूंगी। उनसे मिलने से तुम्हारी सभी कठिनाइयां हल हो जाएंगी।'

'अच्छी बात है।'

'मैं तुम्हारा अभिनन्दन करती हूं मायादेवी, मैं चाहती हूं तुम भी पुरुषों की दासता में फंसी दूसरी हजारों स्त्रियों के लिए एक आदर्श बनो। साहसिक कदम उठाओ और नई दुनिया की स्त्रियों की पथ-प्रदर्शिका बनो। मैं तुम्हारे साथ हूं।'

'धन्यवाद मालतजी, आपका साहस पाकर मुझे आशा है, अब कोई भय नहीं। मैं अपने मार्ग से सभी बाधाओं को बलपूर्वक दूर करूंगी।'

'तो कल आना। हमारा वार्षिकोत्सव है, बहुत बड़ी बड़ी देवियां आएंगी, उनके भाषण होंगे, भजन होंगे, नृत्य होगा, गायन होगा, नाटक होगा, प्रस्ताव होंगे और फिर प्रीतिभोज होगा। कहो, आओगी न ?'

'अवश्य आऊंगी।'

'तुम्हें देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। याद रखो, तुम्हारी जैसी ही देवियों के पैरों में पड़ी परतन्त्रता की बेडियां काटने के लिए हमने यह संस्था खोली है।'

3

मास्टर साहब ट्यूशन पर जाने की तैयारी में थे। माया ने कहा—'सुनते हो, मुझे एक नई खादी की साड़ी चाहिए, और कुछ रुपये। महिला-संघ का जलसा है, मैंने उसमें स्वयं-सेविकाओं में नाम लिखाया है।'

'किन्तु रुपये तो अभी नहीं हैं, साड़ी भी आना मुश्किल है, अगले महीने में…'

माया गरज पड़ी—'अगले महीने में या अगले साल में! आखिर क्या मैं भिखारिन हूं? मैं भी इस घर की मालकिन हूं, ब्याही आई हूं—बांदी नहीं।'

'सो तो ठीक है प्रभा की मां, परन्तु रुपया तो नहीं है न। इधर बहुत-सा कर्जा भी तो हो गया है, तुम तो जानती ही हो ··।'

'मुझे तुम्हारे कर्जों से क्या मतलब? कमाना मर्दों का काम है या औरतों का? कहो तो मैं कमाई करूं जाकर?'

'नहीं, नहीं, यह मेरा मतलब नहीं है। पर अपनी जितनी आमदनी है उतनी…'

'भाड़ में जाए तुम्हारी आमदनी। मुझे साड़ी चाहिए, और दस रुपये।'

'तो बन्दोबस्त करता हूं।' मास्टर साहब और नहीं बोले, छाता सम्भालकर चुपचाप चल दिए।

पूरी तैयारी के साथ सज-धजकर जब माया जलसे में गई तो हद दरजे चमत्कृत और लज्जित होकर लौटी। चमत्कृत हुई वहां के वातावरण से, व्याख्यानों से, कविताओं और नृत्य से, मनोरंजन के प्रकारों से। उसने देखा, समझा—अहा, यही तो सच्चा जीवन है,

कैसा आनन्द है, कैसा उल्लास है, कैसा विनोद है! परन्तु जब उसने अपनी हीनावस्था का वहां आनेवाली प्रत्येक महिला से मुकाबला किया तो लज्जित हुई। उसने दरिद्र, निरीह पति से लेकर घर की प्रत्येक वस्तु को अत्यन्त नगण्य, अत्यन्त क्षुद्र, अत्यन्त दयनीय समझा, और वह अपने ही जीवन के प्रति एक असहनीय विद्रोह और असन्तोष-भावना लिए बहुत रात गए घर लौटी।

मास्टर साहब उसकी प्रतीक्षा में जागे बैठे थे। प्रभा पिता की कहानियां सुनते-सुनते थककर सो गई थी। भोजन तैयार कर, आप खा और प्रभा को खिला, पत्नी के लिए उन्होंने रख छोड़ा था।

माया ने आते ही एक तिरस्कार-भरी दृष्टि पति और उस शयनगार पर डाली, जो उसके कुछ क्षण पूर्व देखे हुए दृश्यों से चकाचौंध हो गई थी। उसे सब कुछ बड़ा ही अशुभ, असहनीय प्रतीत हुआ। वह बिना ही भोजन किए, बिना ही पति से एक शब्द बोले, बिना ही सोती हुई फूल-सी प्रभा पर एक दृष्टि डाले चुपचाप जाकर सो गई।

मास्टर साहब ने कहा—'और खाना ?'

'नहीं खाऊंगी।'

'कहां खाया ?'

'खा लिया।'

और प्रश्न नहीं किया। मास्टर साहब भी सो गए।

माया प्रायः नित्य ही महिला-संघ में जाने लगी। उन्मुक्त वायु में स्वच्छन्द सांस लेने लगी; पढ़ी-लिखी, उन्नतिशील कहाने वाली लेडियों-महिलाओं के संपर्क में आई; जितना पढ़ सकती थी, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने लगी। उसने सुना—उन महामहिम महिलाओं में, जो सभाओं और जलसों में ठाठदार साड़ी धारण करके सभानेत्रियों के आसन को सुशोभित करती हैं,

चारों ओर स्त्री-पुरुष जिनका आदर करते हैं, जिन्हें प्रणाम करते हैं, हंस-हंसकर झुककर जिनका सम्मान करते हैं, उनमें कोई घर को त्याग चुकी है, कोई पति को त्याग चुकी है; उनका गृहस्थ-जीवन नष्ट हो चुका है, वे स्वच्छन्द हैं, उन्मुक्त हैं, वे बाधाहीन हैं, वे कुछ घंटों ही के लिए नहीं, प्रत्युत महीनों तक चाहे जहां रह और चाहे जहां जा सकती हैं, उन्हें कोई रोकने वाला, उनकी इच्छा में बाधा डालने वाला नहीं है। उसे लगा, यही तो स्त्री का सच्चा जीवन है। वे गुलामी की बेड़ियों को तोड़ चुकी हैं, वे नारियां धन्य हैं।

ऐसे ही एक सामाजिक मिलन में उसका परिचय नगर के प्रख्यात डाक्टर कृष्णगोपाल से हुआ। डाक्टर से ज्योंही उसका अकस्मात् साक्षात् हुआ, उसने पहली ही दृष्टि में उसकी भूखी आंखों की याचना को जान लिया। उसने अनुभव किया कि सम्भवतः इस पुरुष से उसे मानसिक सुख मिलेगा। उधर डाक्टर भी अपने पौरुष को अनावृत करके निरीह भिखारी की भांति प्रशंसक वचनों पर उतर आया। याचक की प्रियमूर्त्ति, जिसके दर्शन से ही संचारीभाव का उदय होता है, और जिसका आतुर आकुल शरीर स्पर्श उष्णता प्रदान करता है, ऐसा ही यह व्यक्ति उसे अनायास ही प्राप्त हो गया।

एक दिन सभा में जब सभानेत्री महोदया, तालियों की प्रचण्ड गड़गड़ाहट में ऊंची कुर्सी पर बैठी (उपस्थित प्रमुख पुरुषों और महिलाओं ने उन्हें सादर मोटर से उतारकर फूलमालाओं से लाद दिया था) तो माया के पास बैठी एक महिला ने मुंह बिचकाकर कहा—'लानत है इसपर; यहां ये ठाट हैं, वहां खसम ने पीटकर घर से निकाल दिया है। अब मुकदमेबाजी चल रही है।'

दूसरी देवी ने कुतूहल से पूछा—'क्यों? ऐसा क्यों है?'

'कौन अपनी औरत का रात-दिन पराये मर्दों के साथ घूमते

रहना, हंस-हंसकर बातें करना पसन्द करेगा भला ? घर-गिरस्ती देखना नहीं, देशोद्धार करना या महिलोद्धार करना और घर-बाहर आवारा फिरना।'

'तो फिर बीबी, बिना त्याग किए यों देशसेवा हो भी नहीं सकती।'

'खाक देशसेवा है। जो अपने पति और बाल-बच्चों की सेवा नहीं कर सकती, अपनी घर-गिरस्ती को नहीं सभाल सकती, वह देशसेवा क्या करेगी ? देश के शांत जीवन में अशांति की आग अवश्य लगाएगी।'

माया को ये बातें चुभ रही थीं। उससे न रहा गया, उसने तीखी होकर कहा—'क्या चकचक लगाए हो बहिन, घर-गिरस्ती जाकर संभालो न, यहां वक्त बरबाद करने क्यों आई हो ?'

महिला चुप तो हो गई पर उसने तिरस्कार और अवज्ञा की दृष्टि से एक बार माया को और एक बार सभानेत्री को देखा।

माया सिर्फ स्त्रियों ही के जलसों में नहीं आती-जाती थी, वह उन जलसों में भी भाग लेने लगी, जिनमें पुरुष भी होते। बहुधा वह स्वयं-सेविका बनती, और ऐसे कार्यों में तत्परता दिखाकर वाहवाही लूटती। उसकी लगन, तत्परता, स्त्री-स्वातन्त्र्य की तीव्र भावना के कारण इस जाग्रत् स्त्री-जगत में उसका परिचय काफी बढ़ गया। वह अधिक विख्यात हो गई। लीडर-स्त्रियों ने उसे अपने काम की समझा, उसका आदर बढ़ा। माया इससे और भी प्रभावित होकर इस सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ती गई और अब उसकी वह क्षुद्र-दरिद्र गिरस्ती, छोटी-सी पुत्री और समाज में अतिसाधारण-सा अध्यापक उसका पति, सब कुछ हेय हो गया।

वह बहुत कम घर आती। बहुधा मास्टर साहब को खाना स्वयं बनाना पड़ता, चाय बनाना तो उनका नित्य कर्म हो गया।

पुत्री प्रभा की सार-संभार भी उन्हें करनी पड़ने लगी। वे स्कूल जाएं, टयूशन करें, बच्ची को संभालें, भोजन बनाएं और घर को भी संभालें, यह सब नित्य-नित्य सम्भव नहीं रहा।

घर में अव्यवस्था और अभाव बढ़ गया। माया और भी तीखी और निडर हो गई। वह पति पर इतना भार डालकर, उनकी यत्किंचित् भी सहायता न करके, उनकी सारी सम्पत्ति को अधिकृत करके भी निरन्तर उनसे क्रुद्ध और असन्तुष्ट रहने लगी। पति की क्षुद्र आय का सबसे बड़ा भाग उसकी साड़ियों में, चन्दों में, तांगे के भाड़े में और मित्र-मित्राणियों के चाय-पानी में खर्च होने लगा। मास्टर साहब को मित्रों से ऋण लेना पड़ा। ऋण मास-मास बढ़ने लगा और फिर भी खर्च की व्यवस्था बनी नहीं। दूध आना बन्द हो गया, घी की मात्रा कम हो गई, साग-सब्जी में किफायत होने लगी। मास्टरजी के कपड़े फट गए, उन्होंने और एक ट्यूशन कर ली। वे रात-दिन पिसने लगे। छोटी-सी बच्ची चुपचाप अकेली घर में बैठी पिता और माता के आगमन की प्रतीक्षा करने की अभ्यस्त हो गई। बहुधा वह बहुत रात तक, सन्नाटे के आलम में, अकेली घर में डरी हुई, सहमी हुई, बैठी रहती। कभी रोती, कभी रोती-रोती सो जाती, बहुधा भूखी-प्यासी।

४

साढ़े आठ बज चुके थे। मास्टर हरप्रसाद अपनी दस वर्ष की पुत्री प्रभा के साथ बातचीत करके उसका मन बहला रहे थे। ऊपर से वे प्रसन्न अवश्य दीख रहे थे, परन्तु भीतर से उनका मन खिन्न

और उदास हो रहा था। इधर दिन-दिनभर जो उनकी पत्नी मायादेवी घर से गायब रहने लगी थी। यह उन्हें बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। उनके समुद्र के समान शान्त और गम्भीर हृदय में भी तूफान के लक्षण प्रकट हो रहे थे। फिर भी पिता-पुत्री प्रेम से बातचीत कर रहे थे।

प्रभा ने कहा—'पिताजी आज आप मुझे कमरे में टंगी तस्वीरों में इन महापुरुषों को महिमा समझाइए।'

मास्टर ने प्रेम की दृष्टि से पुत्री की ओर देखा और फिर दीवार पर लगी बुद्ध की बड़ी-सी तस्वीर की ओर उंगली उठाकर कहा—'यह हैं भगवान बुद्ध, जिन्होंने राज-सुख त्याग कठोर संयम व्रत लिया, और विश्व को अहिंसा का संदेश दिया। उन्होंने मूक प्राणियों की ऐसी भलाई की कि आधी दुनिया इनके चरणों में झुक गई।'

फिर उन्होंने शंकराचार्य की मूर्ति की ओर संकेत करके कहा—'ये शंकर हैं, जिन्होंने ब्रह्म-पद पाया, संसार को मायाजाल से छुड़ाया, थोड़ी ही अवस्था में इन्होंने उत्तर से दक्षिण तक नये हिन्दू धर्म की स्थापना की।'

मास्टर बड़ी देर तक उस मूर्ति की ओर एकटक देखते रहे, फिर उन्होंने प्रताप, शिवाजी की ओर संकेत करके कहा—'ये वीरशिरोमणि प्रताप हैं, जिन्होंने पच्चीस वर्ष वन में दुःख पाए पर शत्रु को सिर नहीं झुकाया। ये शिवाजी हैं जिन्होंने हिन्दुओं की मर्यादा रक्खी, इन्होंने ऐसी तलवार चलाई कि दक्षिण में इनकी दुहाई फिर गई।' अन्त में उन्होंने स्वामी दयानन्द की ओर देखकर कहा—'ये स्वामी दयानन्द हैं, जिन्होंने वेदों का उद्धार किया, सोते हुए हिन्दू धर्म को, सत्य का शंख फूंककर जगा दिया।'

फिर मास्टरजी ने गांधीजी के चित्र की ओर उंगली उठाकर कहा—'और ये…'

प्रभा ने उतावली से कहा—'बापू हैं, मैं जानती हूं।'

'हां, जिन्होंने भारत की दासता की बेड़ियां काटीं, प्रेम की गंगा भारत में बहाई, हमें जीवन दिया और अपना जीवन बलिदान किया। जो विश्व-क्रान्ति के पिता—अहिंसा के पुजारी और सत्य के प्रतीक थे।'

बड़ी देर तक मास्टरजी दीवार पर लगी हुई उन महापुरुषों की तस्वीरों की प्रशंसा करते रहे। फिर उन्होंने कहा—'पुत्री, जो कोई इन महापुरुषों के पदचिन्हों पर चलेगा, उसका जीवन धन्य हो जाएगा।'

प्रभा ने कहा—'पिताजी मैं बड़ी होकर इन महापुरुषों की शिक्षाओं पर चलूंगी।'

मास्टरजी ने पुत्री की पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—'पुत्री, ये सब हमारे देश के पूज्य पुरुष हैं, उनकी नित्य पूजा-सेवा करना बालकों का धर्म है।'

पिता-पुत्री इस प्रकार वार्तालाप में मग्न थे कि मायादेवी ने झपटते हुए घर में प्रवेश किया। सीधी अपने कमरे में चली गई।

प्रभा ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—'पिताजी ! माताजी आ गईं।'

मास्टरजी ने सहज स्वर में कहा—'इतनी देर कर दी। बेचारी प्रभा भूखी बैठी है, कहती है, माताजी के साथ ही खाऊंगी।'

बालिका ने कहा—'माताजी, अभी पिताजी ने भी तो भोजन नहीं किया है। आओ, हमको भोजन दो।'

मायादेवी इस समय श्रृंगार-टेबुल के सामने बैठकर जल्दी-जल्दी होंठों पर लिपिस्टिक फेर रही थी, उसने वहीं से कहा—'मुझे फुर्सत नहीं है।'

माता का यह रूखा जवाब सुनकर भूखी पुत्री पिता की

ओर देखने लगी।

मास्टरजी ने कहा—'खाना खा लो प्रभा की मां।'

'मैं तो खा आई हूं।' फिर उसने दो-तीन साड़ियां उलट-पुलट करते हुए पति की ओर देखकर पूछा—'ज़रा देखो तो, कौन-सी ठीक जंचेगी।'

परन्तु मास्टर ने थोड़ा क्रुद्ध होकर कहा-- 'ये साड़ियां इस वक्त क्यों देखी जा रही हैं?'

'मुझे जाना है।' माया ने जल्दी-जल्दी हाथ चलाते हुए कहा।

मास्टर ने कहा—'यह घर से बाहर जाने का समय नहीं है, बाहर से आकर आराम करने का समय है।'

'भाई, तुमने तो नाक में दम कर दिया। मुझे जाना है। आज आजाद महिला-संघ में डान्स है, जानते तो हो—मेरे न होने से वहां कैसा बावैला मच जाएगा।'

'तो दिन-दिनभर घर से बाहर रहना काफी न था, अब रात-रातभर भी घर से बाहर रहना होगा?'

'पिंजरे में बंद पंछी की तरह रहना मुझे पसन्द नहीं है।'

'परन्तु नारी धर्म का निर्वाह घर ही में होता है। घर के बाहर पुरुष का संसार है। घर के बाहर स्त्री, पुरुष की छाया की भांति अनुगामिनी होकर चल सकती है, और घर के भीतर पुरुष पुरुषत्व धर्म को त्यागकर रह सकता है। यह हमारी युग-युग की पुरानी गृहस्थ-मर्यादा है।' मास्टरजी ने आवेश में आकर कहा।

किन्तु माया दूसरे ही मूड में थी। उसने नाक-भौं सिकोड़कर कहा—'इस सड़ी-गली मर्यादा के दिन लद गए। अब स्वतन्त्रता के सूर्य ने सबको समान अधिकार दिए हैं, अब आप नारी को बांधकर नहीं रख सकते।'

बांधकर रखने की बात नहीं। नारी का कार्यक्षेत्र घर है,

पुरुष का घर से बाहर। पुरुष अपने पुरुषार्थ से सुख-संपत्ति ढो-ढोकर लाता है, नारी उसे सजाकर उपभोग के योग्य बनाती है। पुरुष का काम प्रकट है। स्त्री का गुप्त है। पुरुष संचय करता है—स्त्री प्रेम दिखाकर उसे पुरस्कृत करती है। पुरुष संसार के झंझटों का बोझ ढो-ढोकर थका-मांदा जब घर आता है तो स्त्री प्रेम की वर्षा करके उसकी थकान दूर करती है। पुरुष का धर्म कठोर है, स्त्री का धर्म कोमल और दयनीय है। इसीलिए—नारी का स्थान प्यार है और वहीं रहकर वह पुरुषों पर अमृत की वर्षा कर सकती है।'

'और यदि स्त्री भी घर के बाहर अपना कर्मक्षेत्र बनाए तो ?'

'तो यह उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा। संसार के झंझटों का झंझावात उसके रूप-रस को सुखाकर उसे नीरस बना डालेगा। घर से बाहर का कठिन संसार पुरुष के मस्तिष्क और बलवान भुजाओं से ही जीता जा सकता है, स्त्री के कोमल बाहुपाश और भावुक हृदय से नहीं।'

'युग-युग से नारी को पुरुष ने घर के बन्धन में डालकर कमजोर बना दिया है, अब वे भी पुरुष के समान बल संचित कर घर के बाहर के संसार में विचरण करेंगी।' मायादेवी ने उपेक्षा से पति की ओर देखते हुए कहा।

किन्तु मास्टरजी ने सहज शान्त भाव से कहा—'तब उनमें से पुरुष को उत्साहित करने का जादू उड़ंछू हो जाएगा। उनके जिस स्निग्ध स्नेह-रस का पान कर पुरुष मस्त हो जाता है, वह रूप खत्म हो जाएगा। उनके पवित्र आंचल की वायु से पुरुषों की कायरता को नष्ट कर डालने के सामर्थ्य का लोप हो जाएगा। पुरुषों का घर सूना हो जाएगा। नारी का ध्रुव भंग हो जाएगा।'

'यों क्यों नहीं कहते कि नारी के स्वतन्त्र होने से प्रलय हो

जाएगी।' मायादेवी ने तिनककर कहा।

अवश्य हो जाएगी। जैसे पृथ्वी अपने ध्रुव पर स्थिर होकर घूमती है, उसी प्रकार घर के केन्द्र में स्त्री को स्थापित करके ही संसार-चक्र घूमता है। स्त्री घर की लक्ष्मी है। समाज उन्हीं पर अवलम्बित है। स्त्री केन्द्र से विचलित हुई तो समाज भी छिन्न-भिन्न हो जाएगा।'

'ऐसा नहीं हो सकता। जैसे पुरुष स्वतन्त्र भाव से घूम-फिर-कर घर लौट आता है, वैसे स्त्री भी लौट आ सकती है।'

'नहीं आ सकती। पुरुष देखना और जानना चाहता है, अपनाना नहीं। क्योंकि उसमें केवल ज्ञान है। परन्तु स्त्री वस्तु-संसर्ग में आकर उससे लिप्त हो जाती है, क्योंकि उसमें निष्ठा है।'

'क्यों ?'

'क्योंकि नारी की प्रतिष्ठा प्राणों में है, पुरुष की विचारों में। नारी समाज का हृदय है, पुरुष समाज का मस्तिष्क। इस-लिए नारी सक्रिय है, और पुरुष निष्क्रिय है ? नारी केन्द्रमुखी शक्ति है, और पुरुष केन्द्रविमुख है। इसीसे नारी को केन्द्र बना-कर पुरुष-संघ बना है जो नारी के चारों ओर चक्कर काटता रहता है।'

'पर जीवन की सामग्री पर नारी का अधिकार है, पुरुष का नहीं।'

'हां, किन्तु नारी की इसी शक्ति ने नारी को पुरुषों से बांध रखा है।'

'परन्तु अब नारी बन्धनमुक्त होकर रहेगी।'

'तो वह स्वयं नष्ट होकर संसार को और समाज के संगठन को भी नष्ट कर देगी।'

'ये सब पुरुषों के स्वार्थ की बातें हैं।'

'यह वह सत्य है, जिसमें नर और नारी के दो रूप होने के भेद छिपे हैं। नर नर है, नारी नारी है।'

'परन्तु नर-नारी दोनों समान हैं।'

'समान नहीं हैं, दोनों मिलकर एक इकाई हैं। न पुरुष अकेला एक है, न स्त्री अकेली एक है। दोनों आधे हैं, दोनों मिलकर एक हैं।'

'ऐसा नहीं है।'

'ऐसा ही है। स्त्री पुरुष की भूखी है, पुरुष स्त्री का भूखा है, दोनों में दोनों की कमी है। दोनों एक-दूसरे को आत्मदान देकर जब एक होते हैं, तब वे पूर्ण इकाई बनते हैं।'

'स्त्रियों को भी अधिकार है।'

'जब स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर एक इकाई हुए—तो पृथक अधिकार कहां रहे ?'

'वे रहेंगे, हम उन्हें प्राप्त करेंगी।'

'अथवा जो प्राप्त हैं उन्हें भी खोएंगी ?'

बातचीत हो रही थी और मायादेवी का शृंगार भी हो रहा था। अब कंघी-चोटी से लैस होकर उन्होंने कहा—'अच्छा, अब मैं जाती हूं।'

'यह ठीक नहीं है प्रभा की मां।'

'वापस आने पर मैं तुम्हारे उपदेश सुनूंगी, परन्तु अब तो समय बिलकुल नहीं है।'

मायादेवी तेज़ी से चल दीं। उन्होंने उलटकर पुत्री और पति की ओर देखा भी नहीं।

५

डाक्टर कृष्णगोपाल आज बहुत खुश थे। वे उमंग में भरे थे, जल्दी-जल्दी हाथ में डाक्टरी औजारों का बैग लिए घर में घुसे, टेबुल पर बैग पटका, कपड़े उतारे और बाथरूम में घुस गए। बाथरूम से सीटी की तानें आने लगीं और सुगन्धित साबुन की महक घर भर में फैल गई। बाथरूम ही से उन्होंने विमलादेवी पर हुक्म चलाया कि झटपट चाइना सिल्क का सूट निकाल दें।

विमलादेवी ने सूट निकाल दिया, कोट की पाकेट में रूमाल रख दिया और पतलून में गेलिस चढ़ा दी। परन्तु डाक्टर कृष्ण-गोपाल जब जल्दी-जल्दी सूट पहन, मांग-पट्टी से लैस होकर बाहर जाने को तैयार हो गए—तो विमलादेवी ने उनके पास आकर धीरे से कहा—'और खाना?'

'खाना नहीं खाऊंगा।'

'क्यों?'

'पार्टी है, वहां खाना होगा।'

'लेकिन रोज-रोज की ये पार्टियां कैसी हैं?'

'तुम्हें इस पंचायत से वास्ता?'

'आप नाहक तीखे होते हैं, आखिर यह घर है कि सराय! सुबह से निकले और अब नौ बजे हैं। दिनभर गायब। अब आए सो चल दिए। शायद एक-दो बजे आएंगे, शराब में बदहवास। अबमैं कहां तक रोज-रोज यह भुगतूं। यह कौनसा जिन्दगी का तरीका है।'

डाक्टर ने घड़ी पर नजर फेंककर कहा—'ओफ, नौ यहीं बज गए? गजब हो गया। झटपट सेफ से दो सौ रुपये निकाल दो। देर हो रही है।'

'दो सौ रुपये किसलिए?'

'तुम्हारे क्रिया-कर्म के लिए। कहता हूं, देर हो रही है, और तुम अपनी हुज्जत ही नहीं छोड़तीं—अजीब जाहिल हो।'

'जाहिल ही सही, मगर तुम्हारी पत्नी हूं। मुझे भी कुछ हक है।'

'तो यह हक का दावा अदालत में दाखिल करना बाबा, मेरा वक्त बर्बाद न करो, रुपये निकाल दो।'

'मैं पूछती हूं, किसलिए ?'

'तुम पूछने वाली कौन हो ? मुझे जरूरत है।'

'मैं जानना चाहती हूं—क्या जरूरत है।'

'हद कर दी। अरी बेवकूफ औरत, मैं रुपये मांग रहा हूं, सुना कि नहीं।'

'और मैं यह जानना चाहती हूं कि रोज-रोज रात-रातभर घर से बाहर रहने, शराबखोरी करने और इतना रुपया फूंकने का मतलब क्या है ?'

'तबीयत कोफ्त कर दी। मैं कहता हूं, रुपया निकाल दो।'

'मैं कहती हूं, रुपया नहीं मिलेगा।'

'क्यों नहीं मिलेगा ? क्या रुपया तुम्हारे बाप का है ?'

'बाप के रुपये पर हिन्दू स्त्री का अधिकार नहीं होता। रुपया मेरे पति का है। उसपर मेरा पूरा अधिकार है।'

'अरी डायन, यह अधिकार तू मेरे मरने के बाद दिखाना, अभी तो मैं जिन्दा हूं और अपने रुपये का तथा हर एक चीज का मालिक मैं ही हूं।'

'मुझे तुमसे बहस नहीं करनी है। लेकिन मैं तुम्हें आज नहीं जाने दूंगी।'

'तू नहीं जाने देगी ? और रुपया भी नहीं देगी ?'

'नहीं दूंगी।'

'तेरी इतनी हिम्मत ! मैं तुझे काटकर रख दूंगा।'

'ऐसा कर सकते हो।'

डाक्टर तेज़ी से आगे बढ़कर एकदम विमलादेवी के निकट आ गए, और दांत किटकिटाकर कहा—'सेफ की चाभी दे!'

'नहीं दूंगी।'

'अरी चुड़ैल, बता चाभी कहां है?'

'नहीं बताऊंगी, नहीं दूंगी।'

'क्या तू आज ही मरना चाहती है?'

'जब मरने का वक्त आएगा, खुशी से मरूंगी?'

'तो मर फिर।'

डाक्टर ने जोर से उसका गला दबाकर उसे ऊपर उठा लिया और फिर जमीन पर पटक दिया। इसके बाद वे सेफ की चाभी घर भर में ढूंढ़ने को आलमारी और मेजों की ड्रावरों से सामान निकाल-निकालकर इधर-उधर छितराने लगे। विमला-देवी का दीवार से टकराकर सिर फट गया और वे खून में नहा गईं। पांच वर्ष की सोती हुई बच्ची जागकर चीख मार-मारकर रोने लगी। डाक्टर को आखिर चाभी मिल गई। वे सेफ की ओर लपके। पर विमलादेवी ने दौड़कर दोनों हाथों से सेफ पकड़ लिया। वह सेफ से सीना भिड़ाकर खड़ी हो गईं। डाक्टर ने तड़ा-तड़ सेफ की बड़ी चाभी की निर्दय मार विमलादेवी की उंगलियों पर मारनी शुरू की। विमलादेवी के हाथ लोहूलुहान हो गए। वे बेहोश होने लगीं। उन्हें एक ओर ढकेलकर डाक्टर कृष्णगोपाल ने सेफ का ताला खोल डाला और नोटों का बण्डल जेब में डाल तेज़ी से घर के बाहर हो गए। बेहोश और खून में लतपत पत्नी की ओर उन्होंने नजर नहीं डाली, भय और आतंक से माता की छाती पर सिसकती हुई पुत्री पर भी नहीं।

६

डाक्टर जब क्लब में पहुंचे तो दस बज रहे थे। मायादेवी सुर्ख जार्जेट की साड़ी में मूर्त्तिमान मदिरा बनी हुई थीं। उन्होंने सफेद जाली की चुस्त स्लीवलेस वास्केट पहन रखी थी। अपनी कटीली बड़ी-बड़ी आंखों को उठाकर मायादेवी ने कहा—'ओफ, अब आपको फुर्सत मिली है, मर चुकी मैं तो इन्तजार करते-करते।'

'मुझे अफसोस है मायादेवी, मुझे देर हो गई। क्या कहूं, ऐसी जाहिल औरत से पाला पड़ा है कि जिन्दगी कोफ्त हो गई। जब देखिए—रोनी सूरत ··'

मायादेवी से सटकर एक तरुण युवक और बैठा था। शीतल पेय के गिलास को टेबुल पर रख और सिगरेट का धुआं मुंह से उड़ाकर उसने कहा—'डाक्टर अब शरीफ आदमियों को जाहिल औरतों से पिण्ड छुड़ा लेना चाहिए। अच्छा मौसम है। डाक्टर अम्बेडकर साहब को दुआ दीजिए और नेहरू साहब की खैर मनाइए कि जिनकी बदौलत हिन्दू कोडबिल पास हो रहा है। अब शरीफ एजुकेटेड हिन्दू लेडीज और जेन्टलमैन दोनों को राहत, आजादी और खुशी हासिल होगी।'

'मगर ये कम्बख्त हिन्दू इसे कानून बनने दें तब तो ? खासकर ये ग्यारह नम्बर के चोटीधारी चण्डूल वह बावैला मचा रहे हैं कि जिसका नाम नहीं।'

'लेकिन दोस्त, आज नहीं तो कल, कोडबिल बनकर ही रहेगा। इन दकियानूसों की एक न चलेगी।'

'मगर अफसोस, तब तक तो मायादेवी बूढ़ी हो जाएंगी, इनका सब निखार ही उतर जाएगा।'

मायादेवी ने तिनककर कहा—'अच्छा, अब मुझे भी कोसने लगे! यों क्यों नहीं कहते कि मायादेवी तब तक मर ही

जाएगी।'

'लाहौल बिला कूबत, ऐसी मनहूस बात जबान पर न लाना मायादेवी, कहे देता हूं। मरें तुम्हारे दुश्मन। और इस कोडबिल ने भी तबीयत कोफ्त कर दी। लो यारो, एक-एक पैग चढ़ाओ, जिससे तबीयत ज़रा भुरभुरी हो। उन्होंने जोर से पुकारा 'बॉय।'

वैरा आ हाजिर हुआ। डाक्टर ने जेब से सौ का नोट निकाल कर कहा—'झटपट दो बोतल ह्विस्की, बर्फ, सोडा।'

'लेकिन हुजूर, आज तो ड्राई डे है!'

'अबे ड्राई डे के बच्चे, ड्राई डे है तो मैं क्या करूं, क्लब से ला।' उन्होंने एक सौ रुपये का नोट उस पर फेंक दिया। वैरा झुककर सलाम करता हुआ चला गया।

मायादेवी के साथ जो युवक था वह किसी बीमा कंपनी का एजेण्ट था। निहायत नफासत से कपड़े पहने था और पूरा हिन्दुस्तानी साहब लग रहा था। डाक्टर कृष्णगोपाल की गंजी खोपड़ी, अधपकी मूछें और कद्दू के समान कोट के बाहर उफनते हुए पेट को वह हिकारत की नजर से देख रहा था।

इस मण्डली में चौथे महाशय एक सेठजी थे। वे सिल्क का कुर्ता तथा महीन पाढ़ की धोती पर काला पम्पशू डाटे हुए थे। वे चुपचाप मुस्कराकर शराब पी रहे थे। रंग उनका गोरा, आंखें बड़ी-बड़ी और माथा उज्ज्वल था। उंगलियों में हीरे की अंगूठी थी। डाक्टर को ये भी तिरस्कार की नजर से देख रहे थे। बात यह थी कि ये तीनों जेंटलमैन मायादेवी के ग्राहक थे। भीतर से तीनों एक-दूसरे से द्वेष रखते थे। ऊपर से चिकनी-चुपड़ी बातें करते थे। मायादेवी सबको सुलगातीं। सबको खिलौना बनातीं। उनके साथ खेल करतीं, खिजाती थीं और उसीमें उन्हें मजा आता था।

उन्होंने जरा नाक-भौं सिकोड़कर कहा—'आखिर यह

कोडबिल है क्या बला ?'

सेठजी का नाम गोपालजी था। उन्होंने हुमसकर कहा—'मजेदार चीज है। मायादेवी, ठीक मौसमी कानून है।'

'मौसमी कैसा ?' मायादेवी ने गोपाल सेठ पर कटाक्षपात करते हुए कहा।

'इतना भी नहीं समझतीं ? मायादेवी जब उभर आई हैं तभी कोडबिल कानून भी उनकी मदद को आ खड़ा हुआ है। उसका मंशा यह है कि मायादेवी न किसीकी जरखरीद बांदी हैं, न किसीकी ताबेदार, वे स्वतन्त्र महिला हैं। अरे साहब, स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र महिला, वे अपनी कृपादृष्टि से चाहे जिसे निहाल कर दें, चाहे जिसे बर्बाद कर दें।'

डाक्टर ने गिलास खाली करके मेज पर रखते हुए घुड़ककर सेठजी से कहा—'बड़े बदतमीज हो, महिलाओं से बात करने का ज़रा भी सलीका नहीं है तुम्हें, कोडबिल की मंशा तो ज़रा भी नहीं समझते ?'

'तो हजूरेवाला ही समझा दें। गोपाल सेठ ने बनते हुए कहा।

'कोडबिल का मंशा यह है कि आजाद भारत की नारियां आजादी के वातावरण में आजादी की सांस लें। हजारों साल से पुरुष उन पर जो अपनी मिल्कियत जताते आते हैं, वह खत्म हो जाए। पुरुष के समान ही उनके अधिकार हों, पुरुष की भांति ही वे रहें, समाज में उनका दर्जा पुरुष ही के समान हो।'

'वाह भाई वाह ! खूब रहा !' सेठने जोरसे हंसकर कहा—'तब तो वे बच्चे पैदा ही न करेंगी, उनके दाढ़ी-मूछें भी निकल आएंगी। पुरुष की भांति जब वे सब काम करेंगी तो उनका स्त्री-जाति में जन्म लेना ही व्यर्थ हो गया। तब कहो—हम-तुम किसके सहारे जिएंगे, यह बरसाती हवा और पैग का गुलाबी सुरूर सब हवा हो जाएगा !'

'वही गधेपन की हांकते हो। कोडबिल की यह मंशा नहीं है कि स्त्रियां मर्द हो जाएं, उनको दाढ़ी-मूछें निकल आएं या वे बच्चे न पैदा करें। यह तो कुदरत का प्रश्न है, इसमें कौन दखल दे सकता है। कोडबिल का मंशा सिर्फ यह है कि समाज में जो पुरुष उनके मालिक बनते हैं, उन्हें जबरदस्ती अपने साथ बांध रखते हैं, उनके ये मालिकाना अख्तियार खत्म हो जाएं। स्त्रियां समाज में पुरुषों के समान ही अधिकार सम्पन्न हो जाएं।'

'लेकिन यह हो कैसे सकता है ?' तरुण युवक ने जिसका नाम हरवंशलाल था—धुएं का बादल बनाते हुए कहा।

'क्यों नहीं हो सकता ?' डाक्टर ने ज़रा तेज़ होकर कहा।

युवक हरवंशलाल ने कहा—'जनाब, गुस्सा करने की जरूरत नहीं। बातचीत कीजिए। समझिए, समझाइए। पहली बात तो यह कि स्त्रियों का समाज में समान अधिकार हो ही नहीं सकता। उनकी शारीरिक बनावट, मानसिक धरातल और सामाजिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे स्वतन्त्र रह सकें। उन्हें पुरुषों के संरक्षण में रहना ही होगा। उसमें बुराई भी क्या है, समाज में घर के बाहर बहुत भेदिये रहते हैं, उनसे उनकी हत्या होगी। स्त्रियों की हमारे घरों में एक मर्यादा है, उन्हें हम अपने से कमजोर, नीच या दलित नहीं समझते। हम उन्हें अपनी अपेक्षा अधिक पवित्र, पूज्य और सम्माननीय समझते हैं। युग-युग से पुरुषों ने स्त्रियों की मान-मर्यादा के लिए अपने खून की नदियां बहाई हैं, वह इसलिए कि समाज में पुरुष स्त्री का संरक्षक है। अब यदि वह समाज में बराबर का दर्जा पा जाएगी—तो पुरुषों की सारी सहानुभूति और संरक्षण खो बैठेगी। तथा उनकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाएगी।'

'खाक दयनीय हो जाएगी।' मायादेवी ने उत्तेजित होकर कहा—'आप यहां चाहते है कि हम स्त्रियां आप पुरुषों की पैर की

जूती बनी रहें। आप जो चाहें हमारे साथ जुल्म करें, और हमारी छाती पर मूंग दलें और हम कुछ न कहें। चुपचाप बर्दाश्त करें। हजरत, अब यह नहीं हो सकता। हम लोगों ने गुलामी के इस कफन को फाड़ फेंकने तथा आजादी की हवा में सांस लेने का पक्का इरादा कर लिया है। दुनिया की कोई ताकत अब हमें इस इरादे से रोक नहीं सकती।'

'श्रीमती मायादेवी !' युवक ने हंसकर मादक दृष्टि से मायादेवी की ओर देखते हुए कहा—'हम मर्दों का इरादा स्त्रियों के किसी इरादे में दखल देने का नहीं है। पर सच कहने की आप यदि इजाजत दें तो मैं एक ही बात कहूंगा कि आधुनिक काल का प्रत्येक शिक्षित पुरुष जब स्त्रियों के विषय में सोचता है तो वह उनकी उन्नति, आजादी तथा भलाई की ही बात सोचता है। परन्तु आधुनिक काल की प्रत्येक शिक्षित नारी तो पुरुषों के विषय में केवल एक ही बात सोचती है—कि कैसे उन पुरुषों को कुचल दिया जाए, उन्हें पराजित कर दिया जाए। वास्तव में यह ही खतरनाक बात है।'

'खतरनाक क्यों है ?' मायादेवी ने कहा।

'इसलिए ऐसा करने से पुरुषों के हृदय में से स्त्रियों के प्रति प्रेम के जो अटूट सम्बन्ध हैं, वे टूट जाएंगे और उनमें एक परायेपन की भावना उत्पन्न हो जाएगी, तथा स्त्रियां पुरुषों के संरक्षण से बाहर निकलकर कठिनाइयों में पड़ जाएंगी।'

'तब आप चाहते क्या हैं ? यही कि हम लोग सदैव आपकी गुलाम बनी रहें ?'

'आपको गुलाम बनाता कौन है मायादेवी, हम पुरुष लोग तो खुद ही आप लोगों के गुलाम हैं। हमारी नकेल तो आप ही के हाथों में हैं। धन-दौलत जो कमाकर लाते हैं, घर में हम स्त्रियों को सौंप देते हैं। उन्हें हमने घर-बार की मालकिन बना दिया है।

संभव नहीं है कि हम उनकी रजामन्दी के विरुद्ध कोई काम भी कर सकें।'

'लेकिन यह भी तो कहिए कि घर में हमारी इज्जत क्या है, हमारा अधिकार क्या है ?'

'क्या इज्जत नहीं है ? छः साल तक मुर्दों से लड़ाई करते हैं तब डाक्टर की डिग्री मिलती है। परन्तु स्त्री उससे ब्याह करते ही डाक्टरनी बन जाती है। ये सेठजी बैठे हैं पूछिए—कितनों का गला काटकर सेठ बने हैं; और इनकी बीबी तो इनसे ब्याह होते ही सेठानी बन गई। तहसीलदार की बीबी तहसीलदारिन, थानेदार की थानेदारिन स्वतः बन जाती है कि नहीं ? फिर अधिकार की क्या बात ? घर में तो आपका ही राज्य है मायादेवी, हमारी तो वहां थानेदारी चलती नहीं।'

'परन्तु आप यह भी जानते हैं कि घर के भीतर स्त्रियों ने कितने आंसू बहाए हैं।'

'सो हो सकता है, आप ही कहां जानती हैं कि घर के बाहर मर्दों ने कितना खून बहाया है ! आंसू से तो खून ज्यादा कीमती है मायादेवी, यह तो अपनी-अपनी मर्यादा है। अपना-अपना कर्तव्य है। वक्त पर हंसना भी पड़ता है, रोना भी पड़ता है, जीना भी पड़ता है, और मरना भी पड़ता है। समाज नाम भी तो इसी मर्यादा का है ?

सेठ गोपालजी खुश होकर बोले—'बहस मजेदार हो रही है। कहिए मायादेवी, अब आप हरवंशलाल बाबू की क्या काट करती हैं।'

डाक्टर ने जोश में आकर कहा—'हरवंश बाबू की बात की काट करूंगा मैं। आप यदि स्त्रियों को बच्चे पैदा करने की मशीन और अपनी वासना-पूर्ति का साधन नहीं बनाना चाहते तो जनाब आपको उन्हें आजाद करना पड़ेगा, उन्हें समाज में समानता के

अधिकार देने पड़ेंगे।'

'लेकिन किस तरह महाशय, समानता के अधिकारों से आपका मतलब क्या है ? आप यह तो नहीं चाहते कि एक बार बच्चा स्त्री जने और दूसरी बार पुरुष। मासिक धर्म एक महीने स्त्री को हो, दूसरे महीने पुरुष को।'

'यह आप बहस नहीं कर रहे हैं, बहस का मखौल उड़ा रहे हैं। मेरा मतलब यह है कि स्त्री-पुरुषों को समाज में समान अधिकार प्राप्त हों।'

'तो इस बात से कौन इन्कार करता है। बात इतनी ही तो है कि पुरुष घर के बाहर काम करते हैं, स्त्रियां घर के भीतर। अब आप उन्हें घर से बाहर काम करने की आजादी देते हैं तो मेरी समझ में तो आप उन्हें उनकी प्रतिष्ठा तथा शान्ति को खतरे में डालते हैं।'

'यह कैसे ?'

'मैं देख रहा हूं। अब से बीस-पचीस वर्ष पहले हमारे घर की बहू-बेटियां घर की दहलीज से बाहर पैर नहीं धरती थीं। वे पर्दानशीन महिलाओं की मर्यादा धारण करती थीं। रोती थीं तब भी घर की चहारदीवारी के भीतर और हंसती थीं तब भी वहीं। वे अपने पति पर आधारित थीं। पति ही उनका देवता और सब कुछ था। वे लड़ती भी थीं और प्यार भी करती थीं। पर यह बात घर से बाहर नहीं जाती थी। बाहरी पुरुषों के सामने न उनकी आंखें उठती थीं, न जबान खुलती थी। वे अधिक पढ़ी-लिखी भी न होती थीं। घर-गृहस्थी का काम, बच्चों की सार-संभाल और पति की सेवा—बस इसीमें उनका जीवन बीत जाता था। यह क्या बुरा था ?'

'और अब ?'

'उनको क्या ? मैं तो यह देखता हूं कि अच्छे-अच्छे घरानों की

लड़कियां ग्रेजुएट बन गईं। उनकी ब्याह की उम्र ही बीत गई। अब वे ऑफिसों में, स्कूलों में, सिनेमा में अपने लिए काम की खोज में घूम रही हैं। इस काम से उनकी कितनी अप्रतिष्ठा हो रही है तथा कितना उनके चरित्र का नाश हो रहा है, इसे आंख-वाले देख सकते हैं।'

मायादेवी अब तक चुप थीं। अब ज़रा जोश में आकर बोलीं—'तो आप यही चाहते हैं कि स्त्रियां पुरुषों की सदा गुलाम बनीं रहें, उन्हीं पर आधारित रहें।'

'यदि थोड़ी देर के लिए यही मान लिया जाए श्रीमती माया-देवी, कि वे पुरुषों की गुलाम ही हैं तो दर-दर गुलामी की भीख मांगते फिरने से, एक पुरुष की गुलामी क्या बुरी है?'

'यदि वे कोई काम करती हैं, नौकरी करती हैं तो इसमें गुलामी क्या है?'

'अफसोस की बात तो यही है मायादेवी, कि सारा मामला रुपयों-पैसों पर आकर टिक जाता है। टीचर, डाक्टर बनकर या नौकरी करके वे जो पैदा कर सकती हैं—सिनेमा-स्टार बनकर लाखों पैदा कर सकती हैं—मोटर में शान से सैर कर सकती हैं। परन्तु सामाजिक जीवन का मापदण्ड रुपया-पैसा ही नहीं है। स्त्री-पुरुष की परस्पर की जो शारीरिक और आत्मिक भूख है, वही सबसे बड़ी चीज है। उसीकी मर्यादा में बंधकर हिन्दू गृहस्थ की स्थापना हुई है। वही हिन्दू गृहस्थ आज छिन्न-भिन्न किया जा रहा है।'

'पर यह हिन्दू गृहस्थ भी तो आर्थिक ही है। उसकी जड़ में तो रुपया-पैसा ही है?'

'कैसे?'

'अत्यन्त प्राचीन काल में, हिन्दुओं में गृहस्थ की मर्यादा न थी। स्त्री-पुरुष उन्मुक्त थे। स्त्रियां स्वतन्त्र थीं। वे जब जिस पुरुष से

चाहतीं, सम्बन्ध स्थापित करके बच्चा पैदा कर सकती थीं। वे ही बच्चे की मालकिन कहलाती थीं, पुरुष का उससे कोई सम्बन्ध न था। बाद में जब धन-सम्पत्ति बढ़ी, नागरिकता का उदय हुआ, और पुरुष अपनी विजयिनी शक्ति के कारण उसका मालिक हुआ—तो वह धीरे-धीरे स्त्रियों का भी मालिक बनता चला गया। वह जमाना था 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। एक दल दूसरे से लड़ता था—तो जीतनेवाला दल हारने वाले दल का घर-बार, सामान सब लूट लेता था—उसी लूट में वह स्त्रियों को भी लूट लाता और अपने घर की दासी बनाकर रखता। तरुणी और सुन्दरी, ये विजिता दासियां आगे चलकर आधीन पत्नियां बनती गई। समाज में बहु-पत्नीत्व का प्रचलन हुआ और स्त्रियां पुरुष के अधीन हुई।'

'किन्तु अब ?'

'अब स्त्रियों की आर्थिक दासता ही उनकी सामाजिक स्वाधीनता की बाधक है। वे घर में रहकर यदि गृहस्थी चलाएं तो कुछ कमा तो सकतीं नहीं। केवल पति की आमदनी पर ही उन्हें निर्भर रहना पड़ता है है। पर इतना अवश्य है कि गृहस्थी में गृहिणी पति की कमाई पर निर्भर रहकर भी उतनी निरुपाय नहीं है। उसकी बहुत बड़ी सत्ता है, बहुत भारी अधिकार है। पति तो उसके लिए सब बातों का ख्याल रखता ही है—पुत्र भी उसकी मान-मर्यादा का पालन करते हैं।'

मायादेवी ने तिनककर कहा—'क्या मर्यादा पालन करते हैं ? पति के मरने पर वह पति की संपत्ति की मालिक नहीं बन सकती, मालिक बनते हैं लड़के लोग। जब तक पति जीवित है वह उसके आगे हाथ पसारती हैं, और उसके मरने पर पुत्रों के आगे। उसकी दशा तो असहाय भिखारिणी जैसी है।"

'यह ठीक है, बुरे पति और बेटे स्त्रियों को कष्ट देते हैं।

इसका कानून से निराकरण अवश्य होना चाहिए। पर कोडबिल तो कुछ दूसरी ही रचना करता है। यह हिन्दू गृहस्थी को भंग करता है।"

'किस प्रकार ?'

'तलाक का अधिकार देकर।'

'लेकिन तलाक का अधिकार तो अब रोका नहीं जा सकता।' डाक्टर ने तेज़ी से कहा।

'हां, मैं भी यही समझता हूं परन्तु मैं इसका कुछ दूसरा ही कारण समझता हूं, और आप दूसरा।'

'मेरा तो कहना यही है कि तलाक का अधिकार स्त्री को पुरुष के और पुरुष को स्त्री के जबर्दस्ती बन्धन से मुक्त करने के लिए है।' डाक्टर ने कहा।

'परन्तु मेरा विचार दूसरा है। असली बात यह है कि अंग्रेजों से हमने जो नई बातें अपने जीवन में समावेशित की हैं, उनमें एक नई बात 'एक पत्नीव्रत' है। हिन्दू लॉ के अनुसार हिन्दू गृहस्थ एक ही समय में एक से अनेक पत्नियों से विवाह कर और रख सकता है। आप जानते ही हैं कि प्राचीन काल के राजा-महाराजाओं के महलों में महिलाओं के रेवड़ भरे रहते थे। अंग्रेजों के संसर्ग से हमने दो बातें ही सीखीं। पहला 'एक पत्नीव्रत', दूसरा समाज में स्त्रियों का समान अधिकार। यद्यपि भारत में भी राम जैसे एक पत्नीव्रती पुरुष हो गए हैं—पर कानूनन अनेक पत्नी रखना निषिद्ध न था। अब भी हिन्दू लॉ के अधीन अनेक पत्नी रखी जा सकती हैं। परन्तु व्यवहार में यह हीन कर्म माना जाता है। अभी तक 'एक पत्नीव्रत' का कानून नहीं बना था। पुरुष चाहते तो अपनी स्त्री को त्याग दे सकते थे—वह सिर्फ खाना-कपड़ा पाने का दावा कर सकती थी और पुरुष झट से दूसरा विवाह कर लेते थे। उसमें कोई बाधा न थी—परन्तु अब जब, 'एक पत्नीव्रत' कानूनन

कायम हो जाएगा तो स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों ही का तलाक अनिवार्य बन जाएगा। बिना तलाक की स्थापना के पुरुष एक मिनट भी तो 'एक पत्नीव्रत' को सहन नहीं कर सकता।'

'क्यों नहीं कर सकता ?'—इतनी देर बाद सेठजी ने मुंह खोला।

'इसलिए कि वह अपने लम्पट स्वभाव से लाचार है। 'एक पत्नीव्रत' का अर्थ ही यही है कि जब तक पत्नी है तब तक दूसरी स्त्री उसकी पत्नी नहीं बन सकती। अब यदि वह दूसरी स्त्री पर अपना अधिकार कायम रखना चाहता है तो उसे एकमात्र तलाक ही का सहारा रह जाता है। बिना तलाक दिए वह नई नवेलियों का, जीवनभर आनन्द नहीं उठा सकता।'

सेठजी ने जोर से हंसकर कहा—'बात तो पते की कही। हमीं को देखो, अपनी बुढ़िया को घसीटे लिए जा रहे हैं। गले में चिपटी पड़ी है। मरे तो दूसरी शादी का डौल करें।'

'जब तलाक चल गया तो मरने की जरूरत ही न रही साहेब। तलाक दीजिए—और दूसरी शादी कीजिए।'

'और वह स्त्री ?'

'वह भी दूसरी शादी करे।'

'बाह ! तो यों कहो कि तलाक का मसला—अदल-बदल का मसला है। अर्थात् बीबी बदलौवन।'

'बेशक, मगर इसकी जड़ में दो बड़ी गहरी बुराइयां हैं। एक तो यह कि हमारे गृहस्थ में जो पति-पत्नी में गहरी एकता—विश्वास और अभंग सम्बन्ध कायम है—वह नष्ट हो जाएगा। पति-पत्नी के स्वार्थ भिन्न-भिन्न हो जाएंगे। और दाम्पत्य-जीवन छिन्न-भिन्न हो जाएगा।'

'और दूसरा ?'

'दूसरा इससे भी खराब है। आप जानते हैं कि पुरुष स्त्री के

यौवन का ग्राहक है। स्त्रियों का यौवन ढलने पर उन्हें कोई नहीं पूछता। अब तक हमारे गृहस्थ की यह परिपाटी थी कि स्त्री की उम्र बढ़ती जाती थी, वह पत्नी के बाद मां, मां के बाद दादी बनती जाती थी, इसमें उसका मान-रुतबा बढ़ता ही जाता था। अब पुरुष तो पुरानी औरतों को तलाक देकर, नई नवेलियों से नया व्याह रचाएंगे। स्त्रियां भी, जब तक उनका रूप-यौवन है, नये-नये पंछी फसाएंगीं। पर रूप-यौवन ढलने पर वे असहाय और अप्रतिष्ठित हो जाएंगी। उनकी बड़ी अधोगति होगी।'

सेठजी विचार में पड़ गए। बोले—'इस मसले पर तो हमने कोई विचार ही नहीं किया। क्या कहती हो मायादेवी ?'

'मैं तो आप लोगों की हिमाकत को देख रही हूं। क्या दकियानूसी मनहूस बहस शुरू की है। शाम का मजा किरकिरा कर दिया। जाइए आप, अपनी औरतों को बांधकर रखिए। मैं तो अन्याय को दाद न दूंगी। मैं स्त्री की आजादी के लिए पुरुषों से लड़ूंगी, डटकर।''

'और श्रीमती मायादेवी, यह बन्दा इस नेक काम में जी-जान से आपकी मदद करेगा।' डाक्टर ने लबालब शराब से भरा गिलास मायादेवी की ओर बढ़ाते हुए कहा—'लीजिए, हलक तर कीजिए इसी बात पर।'

'शुक्रिया, पर मैं ज्यादा शौक नहीं करती। हां कहिए, श्रीमती विमलादेवी कैसी हैं। आजकल उनसे कैसी पट रही है ?'

'कुछ न पूछो—मुझे तो उसकी सूरत से नफरत है। जब देखो, मनहूस सूरत लिए मिनमिनाती रहती है।'

'तो हजरत, कभी-कभी यहां सोसाइटी ही में लाइए। तरीके सिखाइए। बातें आप बड़ी-बड़ी बनाते हैं मगर करनी कुछ नहीं। मैं कहती हूं—जो कहते हैं उस पर अमल कीजिए।'

'करूंगा, जरूर करूंगा मायादेवी, बस आप जरा मेरी पीठ

पर रहिए।'

सेठजी ने हंसकर कहा—'वाह, क्या बात कही। अच्छा एक दौर चले इसी बात पर।"

सबने गिलास भरे और गला सींचने लगे।

७

मायादेवी आकर अपने कमरे में सो गईं। दिन निकलने पर भी सोती ही रहीं। तमाम दिन वे सोती ही रहीं। मास्टर साहब यद्यपि पत्नी के स्वेच्छाचार से खुश न थे, फिर भी उन्होंने उसे एक-दो बार उठने के लिए कहा पर मायादेवी ने हर बार जवाब दिया कि तबीयत अच्छी नहीं है। विवश मास्टर बेचारे स्वयं खा-पकाकर पुत्री को लेकर स्कूल चले गए। स्कूल से लौटकर जब शाम को उन्होंने देखा कि मायादेवी अब भी सो रही हैं और जो भोजन वे बनाकर उनके लिए रख गए थे, वह भी उन्होंने खाया-पिया नहीं है—तब वे उनके कमरे में जाकर बोले—

'क्या बात है प्रभा की मां, तमाम दिन बीत गया, कब तक सोती रहोगी।'

माया ने क्रोध से कहा—'तुम बड़े निर्दयी आदमी हो। आदमी की तबीयत का भी ख्याल नहीं रखते। मैं मर रही हूं और तुम्हें परवाह नहीं।'

'तुम्हें हुआ क्या है?'

'मेरी तबीयत बहुत खराब है।'

मास्टर ने उसका अंग छूकर कहा—'बुखार तो मालूम नहीं होता।'

'तुम क्या डाक्टर हो, और तुम्हें मालूम क्योंकर होगा, मैं जब तक मर न जाऊं, तुम्हें मेरी बीमारी का विश्वास क्यों आने लगा।'

'तो तुम चाहती क्या हो, डाक्टर बुला लाऊं ?'

'डाक्टर क्या चाहने से बुलाया जाता है ? फिर तुम डाक्टर को बुलाओगे क्यों ? रुपया जो खर्च हो जाएगा।'

मास्टर ने क्षणभर सोचा। फिर धीरे से कहा—'जाता हूं, डाक्टर बुला लाता हूं।'

माया ने कहा—'कौनसा डाक्टर लाओगे ?'

'किसे लाऊं ?'

'उस मुहल्ले के डाक्टर का क्या नाम है, परसों पड़ोस में आया था। एक दिन की दवा में आराम हो गया। उसीको बुलाओ !'

मास्टर जाकर कृष्णगोपाल को बुला लाए। डाक्टर ने मायादेवी की भली भांति जांच की। दिल देखा, नब्ज देखी, जबान देखी, पीठ उंगली से ठोकी, आंखें देखी और कुछ गहरे सोच में गुम-सुम बैठ गए।

मास्टर ने शंकित दृष्टि से डाक्टर को देखकर कहा—'डाक्टर साहब, क्या हालत है ?'

डाक्टर ने मास्टर को एक तरफ ले जाकर कहा—'अभी कुछ नहीं कह सकता। बुखार तो नहीं है, मगर हथेली और तलुओं में जितनी गर्मी होनी चाहिए उतनी नहीं है, आंखों का रंग हर पल में बदलता है, ओठ सूख गए हैं, नाड़ी की चाल बहुत खराब तो नहीं है, परन्तु अनियमित है, उधर दिल की धड़कन···' डाक्टर एकाएक चुप हो गए। जैसे वे किसी गम्भीर समस्या को हल कर रहे हों।

मास्टर साहब ने घबराकर कहा—'कहिए, कहिए, दिल की

धड़कन !'

डाक्टर ने हाथ की घड़ी पर एक नजर डाली। फिर कहा—

'मैं ज़रा द्विविधा में पड़ गया हूं।' फिर कुछ सोचकर कहा—'सूई लगानी ही पड़ेगी !'

मास्टर ने डरते-डरते कहा—'सूई !' और उन्होंने माया की ओर घबराई दृष्टि से देखा। माया ने डाक्टर की ओर एक बार देखकर आंखें नीची कर लीं। डाक्टर ने प्रिस्क्रिप्शन लिखकर धीरे से कहा—'जी हां, सूई लगाना जरूरी है, यह प्रिस्क्रिप्शन लीजिए और ज़रा जल्दी से डिस्पेन्सरी तक चले जाइए, यह दवा ले आइए।'

'और आप तब तक ?' मास्टर ने प्रिस्क्रिप्शन हाथ में लेकर कहा।

'फिक्र मत कीजिए। हां ज़रा गर्म पानी…'

मास्टर ने प्रभा से कहा—'बेटी, मैं अभी दवा लेकर आता हूं। तुम ज़रा अंगीठी जलाकर पानी गर्म तो कर दो।'

मास्टर तेज़ी से चले गए। डाक्टर ने सीटी बजाते हुए माया-देवी की ओर देखा, फिर प्रभा से कहा—'ज़रा जल्दी करो बेटी। हां, इधर धुआं मत करो, तुम्हारी माताजी को तकलीफ होगी। अंगीठी उधर बाहर ले जाओ।'

प्रभा ने कहा—'बहुत अच्छा !' वह बाहर जाकर अंगीठी जलाने लगी।

अब डाक्टर ने इत्मीनान से मायादेवी के पास कुर्सी खींच-कर बैठते हुए कहा—'कहिए हुजूर, क्या इरादा है ? आप झूठ-मूठ किसलिए बीमार बनी हैं, देखने में तो आप असल हीरे की कनी हैं।'

मायादेवी ने मुस्कराकर कहा—'बड़े चंट हैं आप डाक्टर, दोनों को भेज दिया, लेकिन मैं सचमुच बीमार हूं।'

'बीमारी क्या है ?'

'आप इतने बड़े डाक्टर हैं, पता लगाइए !'

'नहीं लगा सकता मायादेवी, अब आप ही मदद कीजिए।'

'आपकी डाक्टरी को ज़ंग लग गई क्या ?'

'ज़ंग ही लग गई समझिए, आप हैं ही ऐसी कि देखते ही आदमी की अक्ल पर पत्थर पड़ जाते हैं !'

'अच्छा ही है, मगर मैं परेशान हूं !'

'किससे ?'

'बीमारी से और किससे !'

'लेकिन हुजूर, बीमारी क्या है ?'

'रातभर नींद नहीं आती।'

'वाह, इस बीमारी का तो मैं स्पेशलिस्ट हूं। मगर यह कहिए कि आपके दिल में कुछ अनोखे-अनोखे खयाल तो नहीं आते ?'

'अनोखे खयाल ?'

'जी हां, जिनमें दिल की उमंगें उमड़ती हों, बढ़े-चढ़े हौसले हों, जीवन का भरपूर सुख लेने, दुनिया को जी भरकर देखने के इरादे हों।'

'हां, हां आते हैं, परन्तु यह भी कोई बीमारी है ?'

'बड़ी भारी बीमारी है, मगर यह कहिए मायादेवी, इस भैंसे के साथ आपकी कैसे पटती होगी। माशाअल्ला, आप एक अप-टुडेट, ऊंचे खयाल की स्मार्ट लेडी हैं, ऐसा मालूम होता है जैसे आपका जन्म खुश होने और खेलने-खाने के लिए ही हुआ हो। लेकिन बुरा मत मानिए मायादेवी, मास्टर साहब अजब बागड़-बिल्ला—मेरा मतलब आपके लायक तो वे किसी हालत में नहीं मालूम होते।'

'ओफ, आप यह क्या कह रहे हैं ?'

'श्रीमतीजी, स्त्री का जन्म प्रेम के लिए हुआ है। जो स्त्री प्रेम

के तत्त्व को जानती है, मैं उसके चरणों का दास हूं।'

'आपने तो मेरा दुःख बढ़ा दिया। मेरा दुखता फोड़ा छू दिया।'

'अब इस फोड़े को चीरकर इसका सब मवाद निकालकर अच्छा करूंगा।'

'डाक्टर, आप आशाओं का बहुत बोझ मत लादिए।'

'वाह, आशा का संदेश तो आप ही की आंखों में है।' डाक्टर ने मायादेवी की तरफ एक दुष्टताभरी दृष्टि से देखकर हंस दिया।

मायादेवी ने नकली क्रोध से कहा—'ओफ, आप गोली मार-कर हंसते हैं डाक्टर !'

'गोली मारना वीरता का काम है, और गोली मारकर हंसना, तो वीरता से भी बढ़कर है। तो आपके कथन का मतलब यह हुआ कि मैं अपने से भी बड़ा हूं।'

इतना कहकर उस डाक्टर ने एकाएक मायादेवी का हाथ पकड़ लिया, और कहा—'मायादेवी, मैं समझता हूं कि तुम गलत जगह पर आई हो, मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर संसार में उतर पड़ना चाहता हूं।'

'मैं ऊब गई हूं।' माया ने वेग से सांस लेकर कहा।

'तो साहस करो !' डाक्टर ने माया का नर्म हाथ अपनी मुट्ठी में कस लिया।

'मगर कैसे ?' मायादेवी ने बेचैन होकर कहा।

'हिन्दू कोडबिल हम पर आशीर्वाद की वर्षा करेगा, समझ लो, वह तुम्हारे और मेरे लिए ही बन रहा है। आओ, दुनिया के सामने नया आदर्श उपस्थित करो।'

मायादेवी ने घबराकर अपना हाथ डाक्टर के हाथ से खींच-कर कहा—'ठहरो, मुझे कुछ सोचने दो।'

इसी समय मास्टर साहब ने झपटते हुए आकर पुत्री को पुकारकर कहा—

'पानी गर्म हुआ बेटी ?'

'जी हां, गर्म हो गया।'

डाक्टर ने सूई लगाकर कहा—'मास्टर, साहब, श्रीमतीजी को शायद बारह सूई लगानी पड़ेंगी। मेरा निरन्तर आना मुश्किल है, बहुत काम रहता है। अच्छा होता, श्रीमतीजी बारह-एक बजे दोपहर को डिस्पेन्सरी में आ जाया करें, उसी समय ज़रा फ़ुर्सत रहती है। ज्यादा समय नहीं लगेगा।'

मास्टर साहब ने सिर खुजाकर कहा—'लेकिन वह तो मेरे स्कूल जाने का समय है।'

'तो क्या हर्ज है, श्रीमतीजी बच्चे के साथ या किसी नौकर को लेकर आ सकती हैं, ज्यादा दूर भी तो नहीं है।'

मास्टर साहब ने कहा—'तब ठीक है, ऐसा ही होगा। आपका मैं बहुत कृतज्ञ हूं।' उन्होंने फीस देकर डाक्टर को विदा किया।

८

डाक्टर कृष्णगोपाल ने श्रीमती मायादेवी का ठीक-ठीक इलाज कर दिया। उनका प्रतिदिन डिस्पेन्सरी में आना, यथेष्ट समय तक वहां ठहरना, गपशप उड़ाना, ठहाके लगाना, बालिका की आंखों में धूल झोंकना, सब कुछ हुआ। मायादेवी की धृष्टता और साहस बहुत बढ़ गया। डाक्टर से, प्रथम संकेत में साफ-साफ उसकी बात हो गई। प्रेम के बहुत-बहुत प्रवचन हुए, वायदे हुए, मान-मनौवल हुई। अन्त में दोनों ही इस परिणाम पर पहुंचे कि

दोनों को एक होकर रहने ही में उनका और संसार का भला है।

इसका परिणाम यह हुआ कि मायादेवी का मन अपने पति, पुत्री और घर से बिल्कुल उतर गया और उसका मन इन सबसे विद्रोह करने को उन्मत्त हो उठा। स्त्री-स्वातन्त्र्य की आड़ में वासना और अज्ञान का जो अस्तित्व था, उस पर उसने विचार नहीं किया।

डाक्टर कृष्णगोपाल दुनिया देखे हुए चंट आदमी थे। मायादेवी पर उनकी बहुत दिन से नजर थी। अब ज्योंही उन्हें मायादेवी की मानसिक दुर्बलता का पता चला तो उन्होंने उसे स्त्रियों की स्वाधीनता की वासना से अभिभूत कर दिया। मायादेवी के सिर पर स्त्री-स्वातन्त्र्य का ऐसा भूत सवार हुआ कि उन्होंने इसके लिए बड़े-से-बड़ा खतरा उठाना स्वीकार कर लिया। और एक दिन डाक्टर से उसकी खुलकर इस सम्बन्ध में बातचीत हुई।

डाक्टर ने कहा—'अब आंखमिचौनी खेलने का क्या काम है मायादेवी ! जो करना है वह कर डालिए।'

'मैं भी यही चाहती हूं। परन्तु आपसे डरती हूं। सच पूछा जाए तो मैं पुरुष मात्र पर तनिक भी विश्वास नहीं करती।'

'क्या मुझपर भी ?'

'क्यों, आप में क्या सुरखाब के पर लगे हैं ?'

'मेरा तो कुछ ऐसा ही ख्याल था।'

'वह किस आधार पर ?'

'श्रीमती मायादेवी इस दास पर इतनी कृपादृष्टि रखती हैं, इसी आधार पर !'

'तो आप मुंह धो रखिए ! मैं पुरुषों की, कानी कौड़ी के बराबर भी इज्जत नहीं करती, मैं उनके फंदे में फंसकर अपनी स्वाधीनता नष्ट करना नहीं चाहती। मुझे क्या पड़ी है कि एक बन्धन छोड़ दूसरे में गर्दन फंसाऊं।'

'तो आपके बिचार से किसीको प्रेम करना गुनाह हो गया।'

'यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु मैं पुरुषों के प्रेम पर कोई भरोसा नहीं करती। उनका प्रेम वास्तव में स्त्रियों को फंसाने का जाल है।'

'यह महज आपका ख्याल ही ख्याल है। मायादेवी, पुरुष जब किसी स्त्री से प्रेम करता है तो अपनी हंसी खो डालता है, अभी आपका शायद किसी पुरुष से वास्ता नहीं पड़ा है।'

डाक्टर ने अजब लहजे में कुछ मुस्कराकर यह बात कही और सिगरेट निकालकर जलाई।

मायादेवी ने मुस्कराकर कहा—'यदि कोई पुरुष मिल गया तो जांच कर देखूंगी।'

'अवश्य देखिए मायादेवी!'

मायादेवी ने हंसकर नमस्ते किया और चल दी। लेकिन डाक्टर ने बाधा देकर कहा—

'यह क्या? आप बिना जबाब दिए ही चल दीं। क्या मैं समझूं कि आप मैदान छोड़कर भाग रही हैं।'

'अच्छा, आप ऐसा समझने की भी जुर्रत कर सकते हैं?' मायादेवी ने ज़रा नखरे से मुस्कराकर कहा।

डाक्टर ने हंसकर कहा—'तो वादा कीजिए, आज रात को क्लब में अवश्य आने की कृपा करेंगी।'

'देखा जाएगा, तबीयत हुई तो आऊंगी।'

'देखिए, आप इस समय एक डाक्टर के सामने हैं। तबीयत में यदि कुछ गड़बड़ी हो तो अभी कह दीजिए, चुटकी बजाते ठीक कर दूंगा। आप मेरी सूई की करामात तो जानती ही हैं।'

'ये झांसे आप मास्टर साहब को दीजिए। मायादेवी पर उनका असर कुछ नहीं हो सकता।'

'तब तो हाथ जोड़कर प्रार्थना करने के सिवाय और कोई

चारा नहीं रह जाता।'

'यह आप जानें, मैं तो आपसे अनुरोध करती नहीं।'

'आज रात्रि में आप क्लब में अवश्य पधारिए। सेठ साहब का भी भारी अनुरोध है।'

'अच्छा आऊंगी'—मायादेवी ने एक कटाक्षपात किया, और चल दी।

६

डाक्टर कृष्णगोपाल की पत्नी विमलादेवी एक आदर्श हिन्दू महिला थीं। वे अधिक शिक्षित तो न थीं, परन्तु शील, सहिष्णुता परिश्रम और निष्ठा में वे अद्वितीय थीं। कृष्णगोपाल के साथ विमलादेवी का विवाह हुए बारह साल हो गए थे। इस बीच उनकी तीन सन्तानें हुईं, जिनमें एक पुत्री सावित्री नौ वर्ष की जीवित थी। दो पुत्र शैशव अवस्था ही में मर चुके थे। जीवन के प्रारम्भ में ही सन्तान का घाव खाने से विमलादेवी अपने जीवन के प्रारम्भ ही में गम्भीर हो गई थीं। वैसे भी वह धीर-गम्भीर प्रकृति की स्त्री थीं। वे दिनभर अपने घर-गृहस्थी के धंधे में लगी रहतीं। दो सन्तानों के बाद इसी पुत्री को पाकर विमलादेवी का मोह इसी पुत्री पर केन्द्रित हो गया था। इससे वह केवल पुत्री सावित्री को प्यार ही न करती थीं, वरन् उसके लिए विकल भी रहती थीं। पुत्री के खराब स्वास्थ्य से वह बहुत भयभीत रहती थीं।

डाक्टर कृष्णगोपाल ने जब विमलादेवी को लेकर अपनी गृहस्थी की देहरी पर पैर रखा, तब तो उन्होंने भी पत्नी को खूब प्यार किया। पति-पत्नी दोनों ही आनन्द से अपनी गृहथी चलाने

लगे। वे खुशमिजाज, मिलनसार और परिश्रमी थे, इससे उनकी प्रैक्टिस खूब चली। परन्तु रुपये की आमदनी ने उनके चरित्र में दोष पैदा कर दिया। वे घर के सम्पन्न पुरुष न थे। साधारण घर के लड़के थे। पिता एक साधारण सरकारी क्लर्क थे। उन्होंने बड़े यत्न से पुत्र को शिक्षा दिलाई। कृष्णगोपाल अपने पिता के अकेले ही पुत्र थे। इससे पिता उन्हें चाहते भी बहुत थे। माता का बचपन ही में देहान्त हो गया था। इससे भी पिता का पुत्र पर बहुत प्रेम था। परन्तु अपनी अवस्था सम्हाल लेने पर जब उनकी डाक्टरी खूब चलने लगी, उन्होंने पिता की कुछ भी खोज-खबर नहीं ली। बेचारे ने अपने देहात के घर में, बहुत दिनों तक एकाकी जीवन व्यतीत करके परलोक प्रयाण किया।

इधर हाथ में रुपया आते ही डाक्टर कृष्णगोपाल को चार दोस्तों की मण्डली मिल गई। उसमें कुछ लोग दुश्चरित्र थे। उन्होंने डाक्टर को ऐय्याश बनाने में अच्छी सफलता प्राप्त की। इससे दिन-दिनभर डाक्टर घर से बाहर रहने लगे और उनकी आय का बहुत-सा भाग इस मद में खर्च होने लगा।

विमलादेवी ने पहले तो इधर ध्यान नहीं दिया। पर धीरे-धीरे उसे सभी बातें ज्ञात होने लगीं। पहले डाक्टर छिपकर शराब पीते थे, बाद में पीकर मदमस्त होकर घर आने लगे। घर लौटने में उन्हें विलम्ब होने लगा। कभी-कभी तो विमलादेवी को पूरी रात-रातभर उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। बहुत बार विरोध भी करना पड़ा। इससे धीरे-धीरे पति-पत्नी में संघर्ष का उदय हुआ। महाभारत छिड़ जाता और दो-दो दिन तक घर में भोजन न बनता। परन्तु इसमें सारा कष्ट विमलादेवी को ही भोगना पड़ता। डाक्टर बाहर चार दोस्तों में जाकर खूब खाते-पीते और मस्त रहते थे। धीरे-धीरे डाक्टर में आवारागर्दी बढ़ती ही गई। अब उनका मन पुत्री से भी हट गया। संतान-स्नेह का जैसे उनके

मन में बीज ही न रहा। वे यों भी बहुत कम घर में आते। परन्तु जब-जब आते—या तो शराब के नशे की झोंक में बकते-झकते, या बदहवाश होकर सो रहते, या पत्नी से छोटी-छोटी बातों में नोंक-झोंक करते।

विमला देवी के धैर्य का भी अन्तत: बांध टूटा और खूबसहिष्णु और गम्भीर होने पर भी वह अधीर होकर उत्तेजित हो जातीं। पहले डाक्टर बक-झक करके ही रह जाते थे। अब मार-पीट भी करने लगे। गाली-गलौज भी इतनी गन्दी बकते कि, विमलादेवी सुनने में असमर्थ हो भागकर अपनी कोठरी का, भीतर से द्वार बन्द करके पलंग पर जा पड़तीं। ऐसी अवस्था में क्रोध से फुफकारते हुए घर से बाहर चले जाते और फिर बहुधा दो-दो, तीन-तीन दिन तक घर न आते थे।

इस प्रकार डाक्टर कृष्णगोपाल की ज्यों-ज्यों डाक्टरी सफल होती गई, त्यों-त्यों उनकी गृहस्थी बिगड़ती गई। विमलादेवी बहुत दुखी रहने लगीं। पुत्री के खराब स्वास्थ्य ने तो उन्हें चिन्तित कर ही रखा था—अब पुत्री तथा अपनी घर-गृहस्थी की ओर से पति की यह उपेक्षा देख, उनका मन वेदना और क्षोभ से भरा रहता। उन्हें बहुधा उपवास करना पड़ता। पति-पत्नी में जब झगड़ा होता तब तो निश्चय चूल्हा जलता ही नहीं था, परन्तु अपने मन की विकलता और अन्तरात्मा के क्षोभ के कारण बहुधा ऐसा होता कि पति और पुत्री को खिला-पिलाकर वह चुपचाप बिना कुछ खाए-पिए सो जातीं।

पुत्री सावित्री यद्यपि नौ वर्ष की छोटी बालिका थी, पर बहुत सौम्य और कोमल वृत्ति की थी। चिरकाल तक अस्वस्थ रहने से उसमें एक गम्भीर उदासी भी आ गई थी। माता के दु:ख को वह कुछ-कुछ समझने लगी थी। मां का प्रेम, उसका सेवा-भाव और उसका दु:ख, यह सब देख छोटी-सी बालिका मां को कभी-कभी

बहुत लाड़-दुलार करती। उसे यत्न से हठपूर्वक खिलाती, हंसाती और मन रखती। मां के लिए वह पिता से भी झिड़कियां खाती।

दुर्भाग्य से विमलादेवी के मातृपक्ष में भो कोई न था। इससे उनका वह सहारा भी नहीं जैसा था। बस सारे संसार में उनकी पुत्री ही उनके लिए एक अवलम्ब थी।

परिस्थिति और आवश्यकता ने विमला देवी को थोड़ा कठोर और दृढ़ भी बना दिया। बहुधा वह पति के अत्याचार का डटकर मुकाबला करती। वह भी अपने अधिकारों को उतना ही जान गई थी जितना अपने कर्तव्यों को। अतः वह जहां अपने कर्तव्य-पालन में पूर्ण सावधान थी, वहां अपने अधिकारों की रक्षा के लिए भी सचेष्ट थी। इसी कारण जब-जब पति-पत्नी में वाग्युद्ध होता तो वह काफी तूमतड़ाम का होता था। दिनोदिन इस युद्ध की भीषणता बढ़ती जा रही थी। और अब तो बहुधा मार-पीट के बाद ही उसकी इतिश्री होती थी। शराब पीकर उसके नशे में डाक्टर बहुधा बहुत गन्दी गालियां बक जाते थे। इन सब बातों से बेचारी छोटी-सी बालिका को व्यर्थ ही अपने आंसू बहाने पड़ते थे।

इस प्रकार यह सुशिक्षित डाक्टर अपनी ही गृहस्थी में आग लगाकर उसीमें ताप रहा था।

१०

क्लब में बड़ी गर्मागर्म बहस चल रही थी। यद्यपि अभी इने-गिने ही सदस्य उपस्थित थे। मायादेवी आज सब्ज परी बनी हुई थीं। वे जोश में आकर कह रही थीं—'पतिव्रत धर्म स्त्रियों के सिर

पर जबरदस्ती लादा हुआ बोझ है, अब समय आ गया है कि स्त्रियां उसे उतार फेंकें।'

सेठजी ने तपाक से कहा—'अजी गोली मारिए, पतिव्रत धर्म भला अब संसार में है ही कहां ? यदि हजार-दो हजार में कहीं एक में पतिव्रत धर्म दीख पड़ा तो उसकी गणना नहीं के समान है।'

इस पर डाक्टर ने छिपी नजर से मायादेवी की ओर देखकर कहा—'आपने शायद पतिव्रत धर्म पर ठीक-ठीक विचार नहीं किया। पतिव्रत धर्म का सम्बन्ध और स्वरूप, वह आध्यात्मिक पारलौकिक भावना है कि जिसका तारतम्य जन्म-जन्मान्तरों तक हिन्दू-संस्कार में है, हिन्दू स्त्री जब तक यह समझती रहेगी कि जिस पति से मेरा सम्बन्ध हुआ है वह जन्म-जन्मान्तर संयोग है, और जन्म-जन्मान्तर तक रहेगा, तो पतिव्रत धर्म की रूपरेखा गम्भीर हो जाती है।'

'परन्तु हजरत, आप एक बात मत भूलिए। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध कामात्मक है—प्रेमात्मक नहीं। क्योंकि प्रेम और काम दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते।'

'यह आपने खूब कही, भला प्रेम और काम दोनों साथ-साथ क्यों नहीं रह सकते ? कदाचित् मैं एक डाक्टर की हैसियत से इस विषय को समझाने में अधिक सफल हो सकूं ?'

'जरूर-जरूर, सेठजी ने आग्रहपूर्वक कहा।

मायादेवी ने हंसकर कहा—'और मैं इस सम्बन्ध में आपको अपना प्रतिनिधि बनाती हूं।'

'धन्यवाद !' डाक्टर ने हंसकर कहा। फिर उसने गम्भीर भाव से कहना प्रारम्भ किया—'यदि इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से विचार किया जाए तो आपका यह कहना कि प्रेम और काम साथ-साथ नहीं रह सकते, गलत प्रमाणित होगा। यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं है कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध कामात्मक है,

प्रेमात्मक नहीं। 'काम' विशुद्ध शारीरिक उद्वेग है। नर-मादा अपरिचित रह जाते हैं। संसार के समस्त जीव-जन्तु, नर-मादा जो केवल कामवृत्ति से मिलते हैं वे काम पूर्ति के बाद अपरिचित रह जाते हैं, केवल पुरुष और स्त्री ही अपने सम्बन्ध को अनुबाधित बनाए रह सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमतत्त्व की कामतत्त्व के साथ गम्भीर आवश्यकता इसलिए भी है कि काम सम्बन्ध एक ही काल में अनेक स्त्रियों से एक पुरुष का, और अनेक पुरुषों से एक स्त्री का हो सकता है, परन्तु प्रेम सम्बन्ध नहीं। प्रेम सम्बन्ध एक काल में एक स्त्री और एक ही पुरुष का परस्पर हो सकता है। स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध में समाज की एक मर्यादा भी है, इसलिए एक स्त्री और पुरुष का स्थिर सम्बन्ध रहना, यह युग-युगान्तर में अनुभव के बाद मनुष्य-जाति ने सीखा और उससे लाभ उठाया है।'

सेठजी ने कहा—'आपकी बात स्वीकार करता हूं, परन्तु लैंगिक आकर्षण और लैंगिक तृप्ति से जो पारस्पारिक प्रीति उत्पन्न होती है उसे प्रेम नहीं कहा जा सकता। यदि किसी स्त्री-पुरुष के जोड़े की परस्पर काम-तृप्ति होती रहती है तो उनमें प्रीति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् एक-दूसरे के लिए रुचिकारक भोजन की भांति प्रिय हो जाते हैं। लोगों ने इसीका नाम 'प्रेम' रख लिया है।'

डाक्टर ने हंसकर मायादेवी की तरफ देखा और कहा—'आपका यह कथन तो सर्वथा अवैज्ञानिक है। असत्य भी है। प्रेम वास्तव में एक विशुद्ध आध्यात्मिक वस्तु है, उसका सम्बन्ध मन से है, और कामतत्त्व से उसका कोई प्रत्यक्ष अनुबन्ध नहीं है। यों जहां कहीं स्त्री और पुरुष का मिलना होता है वहां कामतत्त्व भी उदय होता है, लेकिन जहां काम प्रधान है वहां प्रेम हो ही नहीं सकता।'

काम-तृप्ति का आभास ही प्रेम है ऐसी बात नहीं है। देखिए, छोटे शिशुओं पर माता का प्रेम होता है, भाई-भाई में प्रेम होता है, यह प्रेमतत्त्व कामतत्त्व से बिलकुल ही भिन्न एक वस्तु है। यह भी सम्भवहै कि प्रेमतत्त्व कायम रहे और कामतत्त्व कायम न रहे। यह भो संभव है कि कामतत्त्व कायम रहे पर प्रेमतत्त्व कायम न रहे।'

'वाह, यह आपने खूब कहा। अजी साहेब, आप ज़रा वात्स्यायन के कामशास्त्र को पढ़ें या हवेलिक एलिस के 'साइकोलॉजी ऑफ सेक्स को पढ़ें तो ऐसा कदापि न कहेंगे।' सेठजी ने बड़े जोश के साथ कहा। वे मायादेवी पर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाना चाहते थे। मायदेवी चुपचाप मुस्कुरा रही थीं।

उन्होंने कहा—'तो फिर डाक्टर साहेब, आप पढ़ डालिए इन ग्रन्थों को इस बुढ़ापे में।'

डाक्टर ने ज़रा-सा मुस्कराकर एक सिगरेट निकालकर जलाया और धीरे से कहा—'बहुत कुछ तो पढ़ चुका हूं। मेरे दोस्त इन ग्रन्थों को जितना पूर्ण समझते हैं वे उतने नहीं हैं। सच पूछा जाए तो वात्स्यायन के ग्रन्थ की महत्ता तो उसकी प्राचीनता ही में है। आधुनिक कामशास्त्र में और भी नवीन महत्त्वपूर्ण बातों की खोज की गई है, जिनकी चर्चा उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में नहीं है। फिर, यह तो आप स्वीकार ही करते हैं कि पुरुष-पुरुष में स्त्री-स्त्री में, मनुष्य और पशु में, मनुष्य और जड़ में भी प्रेम हो सकता है, उससे क्या यह बात प्रमाणित नहीं हो जाती कि काम और प्रेम दोनों पृथक वस्तु हैं।'

'किन्तु मीराबाई ने मूर्ति से प्रेम किया और बाद में उस प्रेम की शक्ति से उस जड़मूर्ति को चैतन्य बना लिया।' सेठजी ने कहा।

'अफसोस है कि आप इस अत्यन्त झूठी दकियानूसी बात पर विश्वास करते हैं। कृपया इस बात का ध्यान रखिए कि एक

वैज्ञानिक किसी विषय पर सामाजिक दृष्टकोण से विचार नहीं कर सकता। अलबत्ता विज्ञान पर विचार करने का असर समाज पर अवश्य होगा।'

'छोड़िए, ऐसा ही होगा। परन्तु मैं तो फिर मूल विषय पर आता हूं। पतिव्रत धर्म का बन्धन कई शताब्दियों से न केवल हिन्दू स्त्रियों पर है, प्रत्युत मानव सभ्यता के प्रारम्भिक आर्य समुदाय में भी इसकी विशिष्टता स्वीकार की गई है। इतना ही नहीं, प्राचीन अरबी-फारसियन, ग्रीक, लेटिन, एवं अंग्रेजी साहित्य में भी इसकी काफी चर्चा है। हां, यह सत्य है कि, यह क्रमिक रूप से शिथिल-सा रहा है, परन्तु यह रूढ़िवाद का नहीं, वस्तुवाद और विज्ञानवाद का ध्वंसावशेष माना जाएगा। इसमें स्वार्थ पुरुषों का नहीं स्त्रियों का है। क्योंकि यदि पतिव्रत धर्म के पालन में स्त्री को त्याग करना पड़े तो यह मानना ही पड़ेगा कि त्याग की भावना अभी तक यत्किंचित् मानवता को कायम रख सकी है। भौतिक या सामाजिक दृष्टि से भी पतिव्रत अनावश्यक नहीं समझा जा सकता।'

'अच्छा, तो अब आप मुझे चैलेंज कर रहे हैं?' मायादेवी ने थोड़ा उत्तेजित होकर, सेठजी को घूरकर कहा।

'चैलेंज नहीं कर रहा हूं मायादेवी, एक सत्य बात कह रहा हूं। सोचिए तो, स्त्री-पुरुष में इहलौकिक नहीं पारलौकिक संबंध भी है। यह पारलौकिक सम्बन्ध की विवेचना केवल साम्प्रतिक आध्यात्मिक, या मानविक वस्तु-परिस्थिति पर नहीं की जा सकती। जो नर-नारी के शारीरिक सम्बन्ध को केवल 'काम' शब्द के व्यापक रूप में ही समझना चाहते हैं, वे भूल करते हैं।'

'भूल कैसे करते हैं—सुनूं तो?'

'निवेदन करता हूं! यह तो आपको मानना पड़ेगा कि भौतिक अभिवृद्धि के लिए ही नारी में नारीत्व का उदय हुआ है।'

'खैर, अब ज़रा अपना आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी फरमा दीजिए।'

'यदि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो आप स्वीकार करेंगी कि न प्रेम में स्वार्थ है, न काम में पाशविकता। पशु भाव की भावना से, काम में पाशविकता की और प्रेम के ऊपर स्वार्थ-परता की छाया पड़ गई है। पर देखने से इसमें त्याग की प्रति-मूर्ति के भी दर्शन हो सकते हैं।'

'खाक दर्शन हो सकते हैं, कमाल करते हैं आप सेठजी! खैर आप स्त्रियों की आर्थिक दासता के विषय में क्या कहते हैं?'

'आर्थिक दासता से आपका क्या अभिप्राय है?'

'अभिप्राय साफ है। पहले आप हिन्दू घरों की विधवाओं को ही लीजिए, चाहे वह किसी भी आयु की हों। जिस आसानी से मर्द पत्नी के मरने पर दुबारा ब्याह कर लेते हैं, उस आसानी से पति के मर जाने पर स्त्रियां ब्याह नहीं कर पातीं, यह तो आप देखते ही हैं।'

'बेशक, परन्तु मायादेवी, इसमें सिर्फ लज्जा, समाज के धर्म ही का बन्धन नहीं है, और भी बहुत-सी बातें हैं।'

'और कौनसी बातें हैं?'

'पहली बात तो यह है कि जहां पुरुष ब्याहकर स्त्री को अपने घर ले आता है, वहां स्त्री ब्याह करके पति के घर आती है। ऐसी हालत में वह विधवा होकर यदि फिर ब्याह करना चाहे तो पति के परिवार से उसे कुछ भी सहायता और सहानुभूति की आशा नहीं रखनी चाहिए। रही पिता के परिवार की बात! पहले तो माता-पिता लड़की की दुबारा शादी करना ही पाप समझते हैं, दूसरे, वे इसे अपने वंश की अप्रतिष्ठा भी समझते हैं। आम तौर पर यही खयाल किया जाता है नीच जाति में ही स्त्रियां दूसरा ब्याह करती हैं। यदि उनकी लड़की का दुबारा ब्याह कर दिया

जाएगा तो उनकी नाक कट जाएगी। तीसरे, वे ब्याह के समय 'कन्यादान' कर चुकते हैं और लड़की पर उनका तब कोई हक भी नहीं रह जाता। इसलिए यदि वे जब कभी ऐसा करने का साहस करते भी हैं तभी बहुधा पति के परिवार वाले विघ्न डालते हैं, क्योंकि इस काम में पिता के परिवार की अपेक्षा पति के परिवार वाले अधिक अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं।'

डाक्टर ने बीच ही में बात काटकर कहा—'इसका कारण यह है सेठजी, कि स्त्रियों की न कोई अपनी सामाजिक हस्ती है, न उनका कोई अधिकार है। न उन्हें कुछ कहने या आगे बढ़ने का साहस ही है। इन्हीं सब कारणों से हिन्दू घरों में खासकर उच्च परिवारों में स्त्रियां चाहे जैसी उम्र में विधवा हो जाएं, वे प्रायः ससुराल और पिता के घर में असहाय अवस्था ही में दिन काटती हैं।'

'यही बात है, जो मैं कहती हूं'—मायादेवी ने उत्तेजित होकर कहा—'संयुक्त परिवार में पति की सम्पत्ति में से एक धेला भी नहीं मिल सकता। यदि वे उस परिवार के साथ रहें तो उन्हें रोटी-कपड़े का सहारा मात्र मिल सकता है। इस रोटी-कपड़े के सहारे का यह अर्थ है कि घरभर की सेवा-चाकरी करना, लांच्छना और तिरस्कार सहना, सब भांति के सुखों और जीवन के आनन्दों से वंचित रहना, सबसे पहले उठना और सबसे पीछे सोना, सबसे पीछे खराब-से-खराब खाना खाना, और सबसे खराब पहनना। यही उनकी मर्यादा है—इस मर्यादा से यदि वे तनिक भी चूकीं तो अपमान, तिरस्कार, और व्यंग से उनकी जान ले डालते हैं। प्रायः उन्हें अपनी देवरानियों में दासी की भांति रहना पड़ता है, जिनकी कभी वे मालिक रह चुकी होती हैं। उनकी आबरू और चरित्र पर दाग लगाना एक बहुत साधारण बात है। और इसके लिए उसे बहुत सावधान रहना पड़ता है। पति का मर जाना

उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य समझा जाता है।

डाक्टर ने चेहरे पर शोक-मुद्रा लाकर कहा—'निस्संदेह यह बड़े ही दु:ख की बात है। यह उनका दुर्भाग्य नहीं, हमारी सारी जाति का दुर्भाग्य है।'

मायादेवी ने कहा—'अभी तो मैंने यह उनके पति के घर की बात कही है, पिता के घर का तो हाल सुनिए।...यदि विधवा छोटी अवस्था की हुई तो वह प्राय: पिता के घर ही अधिक रहती है, यदि ससुराल वाले शरीफ हुए तो। माता-पिता उस पर दया और स्नेह तो अवश्य करते हैं, परन्तु उसे देखकर दुखी रहते हैं। किन्तु कठिनाई तो तब आती है जब वह अधिक आयु की हो जाती है। माता-पिता, सास-ससुर मर जाते हैं। ससुराल में देवर-देवरानियों का और पीहर में भाई-भावजों का अकण्टक राज्य रहता है। तब वह सर्वत्र एक भार, एक पराई चीज, एक घृणा और तिरस्कार, क्रोध और अपमान की पात्री भर रह जाती है। उसके दु:ख-दर्द को कोई न समझता है, न उसकी परवाह करता है। संसार के सब सुखों और मानवीय अधिकारों से वह वंचित है।'

डाक्टर ने सहानुभूति-सूचक स्वर में कहा—'निस्संदेह माया देवी, ऐसी अवस्था में यह बात गम्भीरता से सोचने योग्य है कि ऐसे कौन-कौन उपाय काम में लाए जाएं जिनसे स्त्रियों की यह असहायावस्था दूर हो।'

सेठजी अब तक चुप बैठे थे। उन्होंने कहा—'डाक्टर साहेब, आपने ऐसे कुछ उपाय सोचे हैं?'

'क्यों नहीं, मैं तो सदैव से इन विषयों में दिलचस्पी रखता हूं। फिर मायादेवी की धार्मिक बातें भी भुलाने के योग्य नहीं हैं। मेरी राय में राहत मिलने के कुछ उपाय हैं। पहला तो यह कि—विवाह के समय में माता-पिता अधिक-से-अधिक दहेज दें। और दहेज की शकल में हो—गहना, कपड़ा। बर्तन आदि नहीं। और

उसपर लड़की ही का अधिकार हो—ससुराल वालों का तथा उसके पति का न हो। वह रकम एक पेडअप पालिसी की तौर पर इस भांति दी जाए कि उसे वह लड़की भी चाहे तो खुद खर्च न कर सके, न पति आदि के दबाव में पड़कर उसे दे सके। यह रकम ब्याज सहित उसे या तो ब्याह के वीस वर्ष बाद जब कि वह प्रौढ़ और समझदार हो जाए तब मिले, या फिर विधवा होने पर कुछ शर्तों के साथ—जिससे उस रकम का वह पूरा लाभ उठा सके और उसे कोई ठग न सके।'

मायादेवी ने समर्थन करते हुए कहा—'निस्संदेह ऐसा ही होना चाहिए।'

परन्तु सेठजी ने आपत्ति उठाई—'यह तो आप दहेज की प्रथा का समर्थन कर रहे हैं, जिसका विरोध सभी सुधारवादी करते हैं।'

'मैं स्वीकार करता हूं कि आजकल दहेज की प्रथा की ओर लोगों के विरोधी भाव पैदा हो गए हैं। परन्तु इसका कारण यह है कि दहेज की प्रथा के असली कारण को लोग नहीं समझ पाए हैं। दहेज को, पति या उसके ससुरालवाले अपनी बपौती समझते और उसे हड़प लेते हैं, जो वास्तव में अत्यन्त अनुचित है। दहेज की रकम वास्तव में लड़की की सम्पत्ति ही माननी चाहिए, उसी का उसपर अधिकार भी होना चाहिए।'

'यह भला कैसे हो सकता है?' सेठजी ने तर्क उठाया।

'क्यों नहीं हो सकता?' मायादेवी ने तपाक से कहा—'लड़कों की भांति क्या लड़कियां भी अपने माता-पिता की सन्तान नहीं हैं? उन्हें क्या माता-पिता की सम्पत्ति में हिस्सा न मिलना चाहिए? हिन्दू कानून में लड़की को पिता की सम्पत्ति में कुछ नहीं मिलता। सब पुत्र का ही होता है। इसलिए पिता के धन का कुछ भाग लड़की को दहेज के रूप में मिलना ही चाहिए। यह

न्याययुक्त भी है।'

डाक्टर ने कहा—'मायादेवी सत्य कहती हैं।'

'खैर, यह हुई एक बात। दूसरी बात क्या है, वह भी कहिए।'

'दूसरी बात यह कि विवाह के समय जेवर और नगदी के रूप में ससुराल से भी उसे कुछ मिलना चाहिए। यह धन उसी का ही हो। जैसे दहेज का धन पुत्री का धन है उसी प्रकार ससुराल का यह 'दान' स्त्री का धन है। इसे उससे कोई अपहरण न करे। दहेज की भांति आजकल जेवर आदि की ठहरानी को भी निन्दनीय ठहराया जाता है। परन्तु उसका कारण यही है कि लड़की का उस धन पर कोई अधिकार नहीं होता। यह तय होना चाहिए कि जो जेवर, नगदी अधिक-से-अधिक ससुराल वाले अपनी सामर्थ्य के अनुसार दे सकते हैं, वह उस स्त्री का धन हो चुका और वह विधवा होने पर उसीके द्वारा अपना गुजर-वसर कर सकती है। अतएव अधिक-से-अधिक यह हो सकता है कि फिर ब्याह होने की हालत में ससुराल का यह धन उसे लौटा दिया जाए। परन्तु यदि स्त्री की आयु पच्चीस साल से ऊपर हो चुकी हो, एकाध-संतान भी उसकी हो गई हो, खाने-पीने और सुख-सम्मान से रहने की भी सुविधा हो तो वह दूसरा ब्याह न करे।'

'यह हुई दूसरी बात, विचारने योग्य है। अच्छा, तीसरी बात क्या है?'

'तीसरी बात यह है कि विवाह के समय कन्यादान में सगे-सम्बन्धी, इष्ट-मित्र बहुत कुछ कन्या को नगदी अर्पण करते हैं। विदाई के समय में भी ऐसा ही होता है। रिवाज के अनुसार यह सब रकम दूल्हा महाशय हड़प जाते हैं, परन्तु वह रकम भी स्त्री-धन होना चाहिए।'

'बस, या और कुछ।'

'हां, हां, अभी तो कई मद हैं। बहू जब ससुराल आती है, तब

उसे मुंह दिखाई, पैर पड़ाई आदि अवसरों पर भी बहुत कुछ भेंट मिलती है, वह भी उसीका धन होना चाहिए और यह रकम सुरक्षित रूप से उसके नाम कहीं जमा रहनी चाहिए जो आड़े वक्त पर काम आए। या तो उसकी पेड-अप पालिसी खरीद ली जाए या और कोई ऐसी व्यवस्था कर ली जाए जिसमें उस रकम के मारे जाने का भय ही न हो।'

मायादेवी ने डाक्टर को बहुत-बहुत साधुवाद देकर कहा—'ब्रेवो डाक्टर, इस योजना को अवश्य अमल में लाना चाहिए।'

'जरूर, जरूर, परन्तु मायादेवी, अभी तो इस सम्बन्ध में बहुत-सी गम्भीर बातें हैं, मसलन देश की उन्नति में स्त्रियों का कितना हाथ है, क्या कभी किसीने इस पर भी विचार किया है?'

'नहीं, आप इस सम्बन्ध में क्या कहना चाहते हैं?' सेठजी ने कहा।

डाक्टर ने कहा—'बहुत कुछ। पुरुष चाहे जैसा वीर हो, स्त्री के सामने उसकी वीरता हार खाती है। शास्त्रों में जहां स्त्री को अबला कहा गया है वहां वे चण्डिका भी बन जाती हैं।'

मायादेवी उत्साह से बोलीं—'बेशक। जनाब, स्त्रियों की प्रकृति जल के समान है, जो शान्त रहने पर तो अत्यन्त शीतल रहता है, परन्तु जब उसमें तूफान आता है तो वह ऐसा भयंकर हो जाता है कि बड़े-बड़े भारी जहाज भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।'

'मेरा तो खयाल ऐसा है, कि स्त्रियां यदि सुधर जाएं तो देश की बहुत उन्नति हो।'

'अजी आप यही सोचिए कि वे बच्चों की माताएं हैं। उन्हें ढालने के सांचे हैं, वे बच्चों की गुरु हैं, यदि वे योग्य न होंगी तो बच्चे योग्य हो ही नहीं सकते। बच्चे यदि अयोग्य हुए तो कुल

मर्यादा नष्ट हुई समझिए।'

'परन्तु हमारे देश की तो यह हालत है कि स्त्रियां पांच-छः बच्चे पैदा कर लें और बूढ़ी होकर बैठी रहें। उन्हें पुरुष चाहे जितना अपमानित करता जाए, उन्हें उससे कोई वास्ता ही नहीं, पीटें तो पीट भी लें। रात-दिन घर के धन्धे में जुती रहें।'—मायादेवी एक सांस ही में कह गईं।

डाक्टर ने कहा—'निःसंदेह यह एक आपत्तिजनक बात है।'

'अजी, इस गरीब और भूखे-नंगे देश में स्त्रियों को अपने सुधार की बात सोचने का अवसर ही कब मिलता है? एक जमाना था जब चित्तौड़ की क्षत्राणियों ने अपने पुत्रों, भाइयों और पतियों को देश के शत्रुओं से युद्ध करने के लिए उनकी कमर में तलवारें बांधी थीं। एक बात में हम कह सकते हैं कि स्त्रियों के हाथ से देश जिया और उन्हीं के बल पर मर मिटेगा।'

'परन्तु आज तो लोग स्त्रियों को पैर की बेड़ियां समझते हैं। वे सोचते हैं मेरे पीछे स्त्री है, बच्चे हैं, कौन इन्हें सहारा देगा। गोया स्त्री एक मिट्टी का लौंदा है, एक निर्जीव पिण्ड की, जिसकी रक्षा के लिए पुरुषों को अपने सभी कर्तव्य छोड़ने पड़ते हैं। माताओ, तुमने अब वीर पुत्रों को उत्पन्न करना छोड़ दिया, तुम शृंगार करके सज-धजकर बैठ गईं, लोहे के पिंजरे में तुम गहने-कपड़ों के ऊल-जलूल झगड़ों में उलझकर बैठ गईं। और पुरुषों को इसी उद्योग में फंसा रखा कि वह तुम्हारी आवश्यकताओं को जुटाने में मर मिटें। फलतः जीवन के सारे ध्येय पीछे रह गए।'—सेठजी यह कहकर तीखी नजर से मायादेवी की ओर ताकने लगे।

मायादेवी ने कहा—'इसके लिए भी पुरुष ही दोषी हैं। यदि वे स्त्रियों को अपनी वासना का गुलाम बनाए रखने के लिए उन्हें घरों की चहारदीवारी में बन्द न रखते तो आज आपको ऐसा

कहने का अवसर न आता।'

'श्रीमती मायादेवी के समर्थन में मैं इस बोतल में बची हुई लाल परी के तीन समान भाग करता हूं, जिससे दुनिया समझे कि अब पुरुष स्त्रियों को समान अधिकार दे रहे हैं।' यह कहकर डाक्टर ने तीन गिलास भरे और एक-एक गिलास दोनों साथियों के आगे बढ़ाया।

सेठजी ने हंसकर गिलास उठाते हुए कहा—'मैं सादर आपका अनुमोदन करता हूं।'

'और मैं भी।' यह कहकर मायादेवी ने भी गिलास होंठों से लगा लिया।

पी चुकने पर डाक्टर ने एक संकेत मायादेवी को किया और वे बिदा ले चल दीं। डाक्टर भी उठ खड़े हुए।

११

प्रभा को दो दिन से बड़ा तेज़ बुखार था, और माया दो दिन से गायब थी। किसी कार्यवश नहीं, क्रुद्ध होकर। प्रभा ने अम्मा-अम्मा की रट लगा रखी थी। उसके होंठ सूख रहे थे, बदन तप रहा था। मास्टर साहब स्कूल नहीं जा सके थे। ट्यूशन भी नहीं, खाना भी नहीं, वे पुत्री के पास पानी से उसके होंठों को तर करते 'अम्मा आ रही है' कहकर धीरज देते, फिर एक गहरी सांस के साथ हृदय के दुःख को बाहर फेंकते और अपने दांतों से होंठ दबा लेते और माया के प्रति उत्पन्न क्रोध को दबाने की चेष्टा करते। दिनभर दोनों पिता-पुत्री मायादेवी की प्रतीक्षा करते—परन्तु उसका कहीं पता न था।

माया अब एक बालिका की मां, एक पति की पत्नी, एक घर की गृहिणी नहीं—एक आधुनिकतम स्वतन्त्र महिला थी। पुरुषों से, गृहस्थी की रूढ़ियों से, दरिद्र जीवन से सम्पूर्ण विद्रोह करने वाली। वह बात-बात पर पति से झगड़ा करने लगी, प्रभा को अकारण ही पीटने लगी। तनिक-सी भी बात मन के विपरीत होने पर तिनककर घर से चली जाती और दो-दो दिन गायब रहती। उसकी बहुत-सी सखी-सहेलियां हो गई थीं, बहुत-से अड्डे बन गए थे, जिनमें स्कूलों की मास्टरनियां, अध्यापिकाएं, विधवाएं, प्रौढ़ाएं और स्वतन्त्र जीवन का रस लेने वाली अन्य अनेक प्रकार की स्त्रियां थीं। उनमें प्राय: सबों ने स्त्रियों के उद्धार का व्रत ले रखा था।

इन सब बातों से अन्तत: एक दिन मास्टर साहब का समुद्र-सा गम्भीर हृदय भी विचलित हो गया। पत्नी के प्रति उत्पन्न रोष को वे यत्न करके भी न दबा सके। उनका धैर्य साथ छोड़ बैठा। उन्होंने आप-ही-आप बड़बड़ाकर कहा—'बड़ी आफत है, आजाद महिला-सघ की आजादो का तो इन पढ़ी-लिखी बेवकूफ स्त्रियों पर ऐसा गंदा प्रभाव हुआ है कि वे घर से बेघर होने मे ही अपनी प्रतिष्ठा समझती हैं।' उन्होंने एक बार चश्मे से घूरकर ज्वर में छटपटाती पुत्री को देखा।

बालिका ने अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरते हुए पूछा—'बाबूजी, अम्मा आईं !'

'अब आती ही होंगी बेटी। लो, तुम यह दवा पी लो।'

'नहीं पीऊंगी।'

'पी लो बेटी, दवा पीने से बुखार उतर जाएगा।'

'अम्मा के हाथ से पीऊंगी।'

'बेटी, अभी मेरे हाथ से पी लो, पीछे अम्मा आकर पिला देगी।'

'वह कब आएंगी बाबूजी, मैं उससे नहीं बोलूंगी, रूठ जाऊंगी।'

'नहीं बेटी, अच्छी लड़की अम्मा से नहीं रूठा करतीं। लो, दवा पी लो।'

उन्होंने धीरे से बालिका को उठाकर दवा पिला दी, और उसे लिटाकर चुपके से अपनी आंखें पोंछीं।

दूसरे दिन रात्रि में माया आई। उसने न रुग्ण पुत्री की ओर देखा, न भूख-प्यास से जर्जर चिंतित पति को। वह भरी हुई जाकर अपनी कोठरी में द्वार बन्द करके पड़ गई। कुछ देर तो मास्टरजी ने प्रतीक्षा की। बालिका सो गई थी। वे उठकर पत्नी के कमरे के द्वार पर गए और धीरे से कहा—'प्रभा की मां, प्रभा सुबह ही से बेहोश पड़ी है, तुम्हारी ही रट बेहोशी में लगाए है। आओ, तनिक उसे देखो तो।'

'भाई, मैं बहुत थकी हूं, ज़रा आराम करने दो।'

'उसे बड़ा तेज़ बुखार है।'

'तो दवा दो, मैं इसमें क्या कर सकती हूं। मैं कोई वैद्य-डाक्टर भी तो नहीं हूं।'

'लेकिन मां तो हो।'

'मां बनना पड़ा तो काफी गू-मूत कर चुकी। अब और क्या चाहते हो?'

'प्रभा की मां, वह तुम्हारी बच्ची है।'

'तुम्हारी भी तो है।'

मास्टरजी को गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा—'किन्तु बच्चों की देख-भाल तो मां ही कर सकती है।'

'पर बच्चे मां के नहीं, बाप के हैं। उन्हें ही उनकी सम्हाल करनी चाहिए।'

'यह तुम कैसी बात कर रही हो प्रभा की मां, ज़रा लड़की

के पास आओ।'

मायादेवी ने फूत्कार कर कहा—'तुम लोग मेरी जान मत खाओ।'

मास्टर अवाक् रह गए। उन्हें ऐसे उत्तर की आशा न थी। उन्होंने कुछ रुककर कहा—'तुम ऐसी हृदयहीन हो प्रभा की मां !'

मायादेवी सिंहनी की भांति तड़प उठीं। उन्होंने कहा—'मैं जैसी हूं, उसे समझ लो—मेरी आंखें खुल गई हैं। मैं अपने अधिकारों को जान गई हूं। मैं भी आदमी हूं, जैसे तुम मर्द लोग हो। मुझे भी तुम मर्दों की भांति स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। मैं तुम्हारे लिए बच्चे पैदा करने, उनका गू-मूत उठाने से इन्कार करती हूं। तुम्हारे सामने हाथ पसारने से इंकार करती हूं। मैं जाती हू। तुम्हें बलपूर्वक मुझे अपने भाग्य से बांध रखने का कोई अधिकार नहीं है।'

वह तेज़ी से उठकर घर के बाहर चल दी। मास्टर साहब भौंचक मुंह बाए खड़े-के-खड़े रह गए। वे सोचने लगे—आखिर माया यह सब कैसे कह सकी। बिल्कुल ग्रामोफोन की-सी भाषा है, व्याख्यान के नपे-तुले शब्द, साफ-तीखी युक्ति-सुगठित भाषा। क्या उसने सत्य ही इन सब गम्भीर बातों पर, स्त्री-स्वातन्त्र्य पर सामाजिक जीवन के इस असाधारण स्त्री-विद्रोह पर पूरा-पूरा विचार कर लिया है ? क्या वह जानती है कि इस मार्ग पर जाने से उस पर क्या-क्या जिम्मेदारियां आएंगी ? मैं तो उसे जानता हूं, वह कमजोर दिमाग की स्त्री है, एक असहनशील पत्नी है, एक निर्मम मां है। वह इन सब बातों को समझ नहीं सकती। परन्तु वह यह सब कैसे कर सकी ? घर त्यागने का साहस उसमें हो सकता है, यह उसकी दिमागी कमजोरी और असहनशीलतापूर्ण हृदय का परिणाम है, परन्तु उसके कारण इतने उच्च, इतने विशाल, इतने क्रांतिमय हैं, यह माया समझ नहीं सकती। वह

सिर्फ भरी गई है, भुलावे में आई है। ईश्वर करे, उसे सुबुद्धि प्राप्त हो, वह लौट आए—मेरे पास नहीं, मैं जानता हूं, मैं अच्छा पति नहीं, मैं उसकी अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं कर सकता। मेरी क्षुद्र आमदनी उसके लिए काफी नहीं है। फिर भी प्रभा के लिए लौट ही आना चाहिए उसे। पता नहीं कहां गई? पर उसे तलाश करना होगा। उसके गुस्से को इतना सहा है, और भी सहना होगा। और उसने समझा हो या न समझा हो, उसका यह कहना तो सही है ही कि मुझे उसे बलपूर्वक अपने दुर्भाग्य से बांध रखने का कोई अधिकार नहीं है।

क्षणभर के लिए मास्टर साहब को तनखाह के गोल-गोल चालीस रुपये झल-झल करके उनके कानों में चालीस की गिनती कर गुम-गुम होने लगे और उनकी दरिद्रता, असहाय गृहस्थी विद्रूप कर ही-ही करके उनका उपहास करने लगी।

१२

घर से बाहर आते ही थोड़ी दूर पर मायादेवी को एक खाली तांगा दीख पड़ा और वह उस पर सवार हो गई। जब तांगे वाले ने पूछा कि, कहां चलूं? तो मायादेवी क्षणभर के लिए असमंजस में पड़ गईं। झोंक में आकर जो उन्होंने घर त्यागा था, तब खून की गर्मी में आगा-पीछा कुछ भी नहीं सोचा था—अब वह एका-एक यह निर्णय न कर सकीं कि कहां चलें। परन्तु फिर यह उन्हें उचित प्रतीत न हुआ। पहले यही बात उनके मन में थी, परन्तु [illegible] को ऐसा करना अपमानजनक लगने लगा। फिर उन्होंने आ[illegible] संघ में जाने की सोची, पर इस समय

ऐसा भी वह न कर सकीं। अभी उसे घर छोड़े केवल कुछ क्षण ही व्यतीत हुए थे। पर इतने में ही वह ऐसा अनुभव करने लगी कि उसकी सारी ही गरिमा समाप्त हो चुकी है और अब वह पृथ्वी पर अकेली है। उसका मन गहरी उदासी से भर गया। सोच-विचार कर उसने मालतीदेवी के घर जाने का निश्चय किया, और वहीं जाने का तांगे वाले को आदेश दिया।

मालतीदेवी ने माया का स्वागत तो किया, पर माया ने तुरन्त ही ताड़ लिया कि उसका यों सिर पर आ पड़ना मालती को रुचिकर नहीं हुआ है।

रात माया ने बड़ी चिंता में काटी। प्रातःकाल मालती के परामर्श से मायादेवी ने वकील से मुलाकात की। वकील साहब का नाम नवनीतप्रसाद था। बातचीत के मीठे और फीस वसूलने में रूखे। कानून में अधूरे और बकवाद में पूरे। सब बातें सुनकर वकील साहब ने कहा—'हां, हां, आपके विचार बड़े कल्चर्ड हैं श्रीमती जी। अब पुरुषों की अधीनता में पिसने की क्या आवश्यकता है? फिर हिन्दू कोडबिल पास हो गया है। कानून सर्वथा आपके पक्ष में है। हां, फीस का सवाल है।'

'फीस आप जो चाहेंगे, वही मिल जाएगी। उसकी आप चिन्ता मत कीजिए, परन्तु आप पक्के तौर पर तलाक दिला दीजिए।'

'पक्के तौर पर ही श्रीमतीजी, पक्के तौर पर। मैं तो कच्चा काम करता ही नहीं। सारी अदालत यह बात जानती है। हां, फीस की बात है। फीस तो आप लाई होंगी?'

मायादेवी ने पचास रुपये का नोट वकील साहब की मेज पर रखते हुए कहा—'अभी यह लीजिए पचास रुपये। बाकी आप जो कहेंगे और दे दिए जाएंगे। मैं श्रीमती मालतीदेवी के कहने से आई हूं, आपकी फीस मारी नहीं जाएगी।'

'श्रीमतीजी, मालतीदेवी एक कल्चर्ड लेडी हैं। जब वे हमारे-आपके बीच में हैं, तो फिर मामला ही दूसरा है।'

रुपये उठाकर उन्होंने मेज की दराज में रखे और माया-देवी से कुछ प्रश्न पूछकर नोट करने के बाद कहा—'अच्छी बात है, मैं रात को कानून की किताबें देख-भालकर मसविदा तैयार कर लूंगा। कल अदालत में आपका बयान भी हो जाएगा।'

'किन्तु देखिए, ऐसा न हो कि कोई झगड़ा-झंझट खड़ा हो जाए। आगा-पीछा सब आप देखभाल लीजिए।'

'मैंने तो आपसे कह ही दिया कि मैं कच्चा काम नहीं करता। आप किसी बात की चिन्ता न कीजिए। कानून आपके पक्ष में है और मैं आपकी सेवा में। सिर्फ फीस का सवाल है। सो उसकी बात तो आप कहती ही हैं – कि मैं बेफिक्र रहूं।'

'जी, बिल्कुल बेफिक्र रहिए।'

'तो आप भी बेफिक्र रहिए। तलाक हो जाएगा। हां, क्या आप अपने पति से कुछ हर्जाना भी वसूल करना चाहती हैं?'

'जी नहीं, मैं सिर्फ तलाक चाहती हूं।'

'ठीक है, ठीक है।…एक बात और पूछना चाहता हूं। आप यदि नाराज न हों तो अर्ज करूं?'

'कहिए'।

'देखिए, स्त्री-जात की जवानी का मामला बड़ा ही नाजुक होता है। दुनिया में बड़े-बड़े दरख्त हैं, न जाने कब कैसी हवा लग जाए, कब ऊंचा-नीचा पैर पड़ जाए।'

'आपका मतलब क्या है?'

वकील साहब ने सिर खुलजाते हुए कहा—'जी मतलब—मतलब यही कि आप जैसी कल्चर्ड, सुन्दरी युवती को एक आड़ चाहिए।'

'आड़?'

'जी हां, मेरा मतलब है सहारा।'

'आप अपना मतलब और साफ-साफ कहिए।'

वकील साहब अपनी गंजी खोपड़ी सहलाते हुए बोले—'ओफ, आप समझीं नहीं। लेकिन, जहां तक मेरा ख्याल है, शादी तो आप करेंगी ही।'

'इससे आपको क्या मतलब ?'

'जी, मतलब तो कुछ नहीं। परन्तु मैं शायद आपकी मदद कर सकूं।'

'किस विषय में ?'

'शादी के विषय में। मैं एक ऐसे योग्य पुरुष को जानता हूं जो आप ही के समान कल्चर्ड विचारों का है, सभ्य पुरुष है, खुशहाल है, समझदार है। हां, उम्र ज़रा खिंच गई है, पर मर्द की उम्र क्या, पर्स देखना चाहिए। वह पुरुष खुशी से आप जैसी कल्चर्ड महिला से शादी करने को तैयार हो जाएगा।'

मायादेवी ने घृणा से होंठ सिकोड़कर गंजे वकील की ओर देखा और कहा—

'आप कैसे कह सकते हैं कि वह तैयार हो जाएगा, दूसरे के दिल की बात आप जान कैसे सकते हैं ?'

'खूब जानता हूं देवीजी, मैं दावे से कह सकता हूं कि वह आप पर मर मिटेगा।'

'तो वह मर मिटने वाले शायद आप ही हैं।' मायादेवी ने भ्रूभंग करके कहा।

'ही ही, आप भी कमाल की भांपने वाली हैं, मान गया। अब जब आप समझ ही गई हैं, तो फिर कहना ही क्या। मैं सिर्फ इतना कह सकता हूं कि आप एक दिलवाला पति पा सकेंगी।'

'खैर देखा जाएगा, अभी तो आप जो मामले की बात है उसीका ध्यान कीजिए। इस मसले पर पीछे गौर कर लिया

जाएगा।'

'तब तो श्रीमती जी फीस का मसला ही खत्म'—आप चाहें तो ये पचास रुपये भी लेती जाइए।'

'अभी उन्हें रखिए। शायद आपको अभी जरूरत पड़ जाए तो मैं आपके पास कल कचहरी में मिलूं?'

'कचहरी में क्यों, यहीं आइए। हम लोग साथ-साथ चाय पिएंगे, और काम की बातें करेंगे, एक-दूसरे को समझेंगे, समझती हैं न आप?'

'खूब समझती हूं।'

'कमाल करती हैं आप। क्या साफगोई है। मान गया। तो पक्की रही, आप आ रही हैं न कल?'

'मैं कचहरी में मिलूंगी, आप सब कागजात तैयार रखिए।'

'लेकिन मेरी दर्खास्त···' वकील साहब ने बेचैनी से कहा।

मायादेवी ने उठते हुए कहा—'पहले मेरी दर्खास्त की कार्यवाही हो जाए।'

वकील साहब हंस पड़े। 'अच्छा, अच्छा, यह भी ठीक है।' उन्होंने कहा।

मायादेवी 'नमस्ते' कह विदा हुई।

१3

मास्टर हरप्रसाद ने वह रात बड़े कष्ट और उद्वेग से काटी। रुग्णा बालिका को छोड़कर वे रात में कहीं जा भी नहीं सकते थे। और मायादेवी का इस प्रकार चला जाना उनके लिए एक असंभावित घटना थी। इसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। वे

एक उदार विचारों के तथा शान्त प्रकृति के सज्जन सद्‌गृहस्थ थे, इसीसे उन्होंने अपनी पत्नी को इतनी स्वतन्त्रता भी दे रखी थी। उसका परिणाम ऐसा घातक होगा—जिससे उनकी गृहस्थी ही में आग लग जाएगी, यह उन्होंने नहीं सोचा था। इधर कुछ दिन से मायादेवी के व्यवहार, आचरण उनके लिए असह्य होते जा रहे थे—परन्तु वे यह सोच भी न सके थे कि एकमात्र अपने पति और पुत्री को इस भांति निर्मम होकर छोड़कर चली जाएगी।

प्रात:काल होने पर जल्दी-जल्दी वे अपने नित्य-कर्म से निवृत्त होकर प्रभा को कुछ पथ्य-पानी दे और तसल्ली दे मालती देवी के मकान पर पहुंचे। मालती से मुलाकात होने पर उन्होंने कहा—'सम्भवत: मेरी पत्नी मायादेवी आपके यहां आ गई है। 'कृपया ज़रा उसे बुला दीजिए, मैं उसे घर ले जाने के लिए आया हूं।'

मालतीदेवी ने जवाब दिया—'श्रीमती मायादेवी आपसे मुलाकात करना नहीं चाहतीं, पत्नी की हैसियत से आपके साथ रहना नहीं चाहतीं, आपने उनपर अत्याचार किया है। अत: आजाद महिला-संघ के नियम के अनुसार हमने उन्हें आश्रय दिया है, और मुझे आपसे यह कहना है कि आप उनकी मर्जी के विरुद्ध न मिल सकते हैं, न उन्हें जबरदस्ती साथ ले जा सकते हैं।'

'परन्तु वह मेरी है, मुझे उससे मिलने तथा अपने साथ उसे घर ले जाने का अधिकार है।'

'तो आप इसके लिए कानूनी चारागोई कर सकते हैं।'

'परन्तु इसकी आवश्यकता क्या है, यह पति-पत्नी के बीच की बात है।'

'सैकड़ों वर्षों के उत्पीड़न के बाद अब इस बात की आवश्यकता आ ही पड़ी है कि पति-पत्नी के बीच भी कानून हस्तक्षेप

करे, जिससे पति के अत्याचारों से पत्नी की रक्षा हो।'

'परन्तु कहीं अत्याचार की बात भी हो, इस प्रकार की चेष्टा तो स्त्रियों ही का अत्याचार है।'

'तब तो अवश्य कानून आपका सहायक होगा, अब आप जा सकते हैं।'

'कृपा कर मेरी पत्नी को बुला दीजिए—झंझट मत खड़ा कीजिए।'

'आप स्वयं ही संघ के ऑफिस में झंझट खड़ा कर रहे हैं। कृपया आप चले जाइए।'

'मैं अपनी पत्नी को यहां से ले जाने के लिए आया हूं।'

'वह आपके साथ नहीं जाना चाहतीं।'

'मैं उसे समझा लूंगा, आप उसे बुलाइए।'

'वह आपसे बात भी करना नहीं चाहतीं।'

'आप गजब करती हैं मालतीदेवी, एक पति और पुत्री से उसकी पत्नी और माता को जुदा करती हैं! आपको तो मेरी सहायता करनी चाहिए।'

'शायद कानून आपकी सहायता करे।'

'आप व्यर्थ ही बारम्बार कानून का नाम क्यों घसीटती हैं? पति-पत्नी के बीच आत्मा का सम्बन्ध है, कानून की इसमें क्या आवश्यकता?'

'मै आपसे इस समय, इस विषय पर विवाद नहीं कर सकती।'

'मैं भी विवाद करना नहीं चाहता। आप मेरी पत्नी को बुला दीजिए।'

'वह नहीं आएंगी?'

'क्यों नहीं आएंगी?'

'यह उनकी इच्छा है।'

'यह तो आपका अन्याय है मालतीदेवी, आप नहीं जानतीं, उसकी पुत्री बीमार है, वह मां को पुकार रही है।'

'तो इसमें मैं क्या करूं?'

'आप दया कीजिए मालतीदेवी!'

'क्या जबरदस्ती?'

'जबरदस्ती नहीं, श्रीमतीजी, मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूं।'

'आप नाहक हमारा सिर खाते हैं।'

'लेकिन उसने उचित नहीं किया है, उसे सोचना होगा और आपको भी उसे समझाना चाहिए। सोचिए तो सही, वह एक पति की पत्नी ही नहीं, एक बच्ची की मां भी है।'

'वह अपना हानि-लाभ सोच सकती है, उसे आपकी शिक्षा की आवश्यकता नहीं।'

'है, श्रीमतीजी, है। उसे मेरी शिक्षा की, सहायता की बहुत जरूरत है। वह अपना हानि-लाभ नहीं सोच सकती।'

तो आप चाहते क्या हैं?'

'जरा उसे यहां बुलाइए, मैं उससे बात करना चाहता हूं।'

'परन्तु मैंने कहा, वह आपसे बात करना नहीं चाहती।'

'नहीं, नहीं, बात करने में हानि नहीं है।'

'ओफ, आपने तो सिर खा डाला! मैं कहती हूं, आप चले जाइए।'

'मैं उसे ले जाने के लिए आया हूं।'

'आप उसे जबरदस्ती नहीं ले जा सकते।'

'मैं उसे समझाना चाहता हूं।'

'वह आपसे मिलने को तैयार नहीं।'

'मैं उसका पति हूं श्रीमतीजी, वह मेरी पत्नी है, मेरा उसपर पूरा अधिकार है।'

'तो आप अदालत में जाइए, अपने अधिकार का दावा

कीजिए।'

'छी, छी ! श्रीमतीजी, आप महिलाओं की हितैषिणी हैं, आप कभी यह पसन्द नहीं करेंगी।'

जी, मैं तो यह भी पसन्द नहीं करती कि पुरुष स्त्रियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध अपनी आवश्यकताओं का गुलाम बनाएं।'

'कहां, हम तो उन्हें अपने घर-बार की मालकिन बनाकर, अपनी प्रतिष्ठा, सब कुछ सौंपकर निश्चिन्त रहते हैं। जो कमाते हैं, उन्हीं के हाथ पर धरते हैं, फिर प्रत्येक वस्तु और कार्य के लिए उन्हीं की सहायता के भिखारी रहते हैं।'

'विचित्र प्रकृति के व्यक्ति हैं आप, अब मुझीसे उलझ रहे हैं। आप यह व्याख्यान किसी पत्र में छपवा दीजिएगा। आपकी युक्तियों का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है।'

'किन्तु श्रीमतीजी, आप एक पति और उसकी पत्नी के बीच इस प्रकार का व्यवधान मत बनिए।'

'अच्छा तो आप मुझे धमकाना चाहते हैं?'

'मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, विनय करता हूं। आप भद्र महिला हैं। एक माता को उसकी रुग्णा पुत्री से, उसके निरीह पति से पृथक् मत कीजिए। आप बड़े घर की महिलाएं, और आप के पतिगण, यह सब विच्छेद सहन करने की शक्ति रखते हैं, हम बेचारे गरीब अध्यापक नहीं। हमारी छोटी-सी गरीब दुनिया है, शान्त छोटा-सा घर है, एक छोटे-से घोंसले के समान। हम लोग न ऊधो के लेने में और न माधो के देने में। दिनभर मेहनत करते है—घर में पत्नी और बाहर पति, और रात को अपनी नींद सोते हैं। आप बड़े-बड़े आदमियों का शिकारी जीवन है, उसमें संघर्ष है, आकांक्षाएं हैं, प्रतिक्रिया है और प्रतिस्पर्धा है। इन सबके बीच आप लोगों का व्यक्तिगत जीवन एक गौण वस्तु बन जाता है। पर हम लोग इन सब झंझटों से पाक-साफ हैं। कृपया हम जैसे

निरीह प्राणियों को अपनी इस जीवन की घुड़दौड़ में न घसीटिएगा। दया कीजिए। मेरी पत्नी मेरे साथ कर दीजिए, मैं उसे समझा लूंगा, उससे निपट लूंगा।'

'अच्छा तो आप चाहते हैं कि मैं चपरासी को बुलाऊं? या पुलिस को फोन करूं?'

'जी नहीं, मैं चाहता हूं कि आप मायादेवी को यहां बुला दें। मैं उन्हें अपने घर ले जाऊं।'

'यह नहीं हो सकता।'

'यह बड़ा अन्याय है, श्रीमतीजी!

'आप जाते हैं, या चपरासी बुलाया जाए?…'

'चपरासो…ओ चपरासी!'

देवीजी ने उच्च स्वर से पुकारा। अपनी टेढ़ी और घिनौनी मूंछों में हंसता हुआ हरिया आ खड़ा हुआ। अर्ध उद्दण्डता से बोला—

'क्या करना होगा मेम साहेब?'

मेम साहब के कुछ कहने से प्रथम ही मास्टर साहब—'कुछ, नहीं, भाई, कुछ नहीं' कहते हुए अपना छाता उठा ऑफिस से बाहर हो गए। चलती बार वे श्रीमती को नमस्ते कहना भूले नहीं। उनके हृदय में द्वन्द्व मचा हुआ था।

१४

रात के नौ बज रहे थे। क्लब के एक आलोकित कमरे में तीन व्यक्ति बड़ी सरगर्मी से बहस में लगे थे। तीनों में एक थे डाक्टर कृष्णगोपाल, दूसरे सेठजी और तीसरी थीं श्रीमती मालतीदेवी!

डाक्टर और सेठजी खूब जोश में बहस कर रहे थे।

डाक्टर ने कहा—'जीवन की सामग्री पर नारी का अधिकार है, नर का नहीं, क्योंकि कर्मक्षेत्र में नारी की ही प्रधानता है।'

'परन्तु पुरुष का ज्ञान सबसे बढ़कर है।' सेठजी ने कहा।

'बेशक, पुरुष मस्तिष्क से ज्ञान प्राप्त कर सकता है, पर उसमें तब तक उसके प्रयोग की शक्ति उत्पन्न नहीं होगी जब तक कि नारी-शक्ति का उसमें सहयोग न हो।'

'यह क्यों ?'

'इसलिए कि पुरुष संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, पर उसमें सौन्दर्य की सृष्टि स्त्री ही करती है।'

'किन्तु किस प्रकार ?'

'पुरुष मन और बुद्धि से कर्मक्षेत्र में विजय पाता है, स्त्री सहज चातुरी से। सच्ची बात तो यह है कि नारी की शक्ति ने नारी को वस्तुओं से बांध रखा है। पाण्डवों को जय करने के लिए कौरवों को अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करनी पड़ी, पर द्रौपदी ने नेह-बन्धन से पाण्डवों को बांध लिया।'

'परन्तु पुरुष के शरीर में बल है।'

'तो स्त्री के हृदय में शक्ति है, उसके हृदय में जो शक्ति की धार बहती है, उसके प्रभाव से उसे किसी बाहरी बल की आवश्यकता नहीं। यही शक्ति उसके कोमल अंग को बज्र का-सा प्रहार सहने की शक्ति देती है। युग-युग से वह पुरुष के भयानक प्रहारों को सहती आई है, सो इसी शक्ति की बदौलत। वह इन पुरुष-पशुओं की चिता पर जिन्दा जली है इसी शक्ति को लेकर। उसने अकेले ही विश्वभर के निर्मम पुरुषों को संयत संसार में बांध रखा है, इसी शक्ति की बदौलत।'

'फिर भी पुरुष सदा से समाज का स्वामी रहा है।'

'पर समाज की निर्मातृ देवी स्त्री है। पुरुष पुरुष है, स्त्री देवी

देवी है। पुरुष में प्राण-शक्ति की न्यूनता है। पुरुष में सामर्थ्य का व्यय है, स्त्री में आय। इसीसे नारी शील, संस्कार की जितनी वश वर्तिनी है उतना पुरुष नहीं।'

'यह कैसे ?'

'आप देखते नहीं कि नारी जिसे एक बार स्पर्श करती है उसे अपने में मिला लेती है अपनापन खोकर।'

'और पुरुष ?'

'पुरुष तो केवल जानना और देखना चाहता है, अपनाना नहीं।'

'नारी भी तो।'

'नारी निष्ठा के कारण वस्तु-संसर्ग में जाकर लिप्त हो जाती है, जब कि पुरुष उससे अलग रहता है।'

'तो इसीसे क्या पुरुष नारी से हीन हो गया ?'

'क्यों नहीं, जहां तक प्रतिष्ठा का सवाल है, नारी पुरुष से आगे है।'

'कहां ?'

'अपने सारे जीवन में, नारी की प्रतिष्ठा प्राणों में है—पुरुष की विचारों में। इसलिए नारी सक्रिय है और पुरुष निष्क्रिय। इसीसे पुरुष भगवान का दास है, परन्तु नारी पत्नी है। पुरुष भक्ति देता है, स्त्री प्रेम। पुरुष विश्व को केन्द्र मानकर आत्म-प्रतिष्ठा की चेष्टा करता है और स्त्री आत्मा को केन्द्र मानकर विश्व-प्रतिष्ठा करती है। इसीसे समाज-रचना और परिपालन में वही प्रमुख है।'

'फिर भी वह पुरुष पर आश्रित है।'

'वह कृत्रिम है। वास्तव में नारी केन्द्रमुखी शक्ति है और पुरुष केद्र विमुखी। नारी-संसर्ग से ही पुरुष सभ्य बना है। नारी से ही धर्म-संस्था टिकी है। एक अग्नि है दूसरा घृत। अग्नि में घृत की

आहुति पड़ने से ही से यज्ञ सम्पन्न होता है। स्त्री-पुरुष का जब संयोग होता है तब उसे यज्ञ धर्म कहते हैं, सच्चे यज्ञ का यही स्वरूप है।'

'परंतु सृष्टिकर्ता पुरुष है।'

'पुरुष मन की सृष्टि करता है, नारी देह की सृष्टि करती है। पुरुष जीवात्मा को जगा सकता है, पर उसके आकार की रचना नारी ही करती है।'

'पुरुष हिरण्य गर्भ है।'

'नारी विराट् प्रकृति है।'

'पुरुष स्वर्ग है।'

'नारी पृथ्वी है।'

'पुरुष तपशक्ति का रूप है।'

'नारी यज्ञ शक्ति का। विवाह धर्माचरण है, स्त्री सहधर्मिणी है। उसके बिना पुरुष धर्माचरण नहीं कर सकता। दीन-हीन पुरुष संसार में रह सकता है, पर दीन-हीन नारी नहीं रह सकती। उसकी जीवन-शक्ति, सौंदर्य के प्रकाश में रहती है।'

'संक्षेप में, समाज के दो समान रूप हैं, एक नर दूसरा नारी। दोनों एक वस्तु के दो रूप हैं। दोनों मिलकर एक सम्पूर्ण वस्तु बनती है।' मायादेवी ने विवाद का उपसंहार किया। इस मनोरंजक विवाद को सुनने क्लब के अन्य सदस्य भी एकत्र हो गए थे। सबने करतल-ध्वनि करके मायादेवी को साधुवाद दिया और सब लोग विनोदपूर्ण बातों में लग गए।

जब सब लोग विदा होने लगे तब डाक्टर मायादेवी के साथ-साथ मालतीदेवी के स्थान तक आए। दोनों में थोड़ा गुप्त परामर्श हुआ और मायादेवी को मालती के स्थान पर छोड़कर डाक्टर अपने घर चले गए।

१५

डाक्टर कृष्णगोपाल शहर के प्रसिद्ध चिकित्सक थे। उनकी प्रैक्टिस खूब चलती थी। उन्होंने नाम और दाम खूब कमाया था। मिलनसार, सज्जन और उदार भी थे। विद्वान विचारक और क्रियाशील थे। इतने सद्‌गुणी होने पर भी वे सद्‌गृहस्थ न रह पाए। उनकी पत्नी विमलादेवी, एक आदर्श हिंदू महिला थीं। वैसी कर्मठ पतिप्राणा पत्नी पाकर कोई भी पति धन्य हो सकता है। ऐसे दम्पति का जीवन अत्यंत सुखी होना चाहिए था, पर दुर्भाग्य से ऐसा न था। चरित्र की हीनता ने डाक्टर कृष्णगोपाल के सारे गुणों पर पानी फेर दिया था। शराब और व्यभिचार, ये दो दोष उनमें ऐसे जमकर बैठ गए थे कि इनके कारण उनके सभी गुण दुर्गुण बन गए और उनका जीवन अशांत और दुःखमय होता चला गया।

श्रीमती विमलादेवी जैसी आदर्श पत्नी थीं, वैसी ही आदर्श माता, गृहणी और रमणी भी। मुहल्लेभर में उनका मान था, अपमान था केवल पति की दृष्टि में। पति अपनी गृहस्थी तथा पतिभाव की मर्यादा का पालन नहीं करते, यही उनकी शिकायत थी, और अब यह शिकायत तीव्र से तीव्रतम होती हुई उग्र झगड़े की जड़ बन गई थी। यह खेद और लज्जा की बात कही जानी चाहिए कि डाक्टर जैसा सभ्य, सुशिक्षित पति विमलादेवी जैसी साध्वी, शान्त पत्नी पर हाथ उठाए, पशु की भांति व्यवहार करे, परन्तु प्रायः नित्य ही यह होता था। डाक्टर दिन-दिन बुरी सोहबत में फंसकर फजूलखर्च, शराबी और व्यभिचारी बनते जा रहे थे। और अब तो वे उस दर्जे को पहुंच चुके थे जब उन्हें किसी धक्के की जरूरत ही न थी, वे स्वयं तेज़ी से फिसलते जा रहे थे।

मायादेवी से उनका साक्षात्कार होना तथा घनिष्ठता की

सीमा पार कर जाना उनके जीवन में तूफान ले आया। दोनों का दोनों के प्रति आकर्षण शुद्ध और प्रगाढ़ प्रेम का प्रतीक न था, कोरा वासनामूलक था। इसके अतिरिक्त माया और कृष्ण-गोपाल दोनों ही अपनी सनक की झोंक में बिना आगा-पीछा सोचे बढ़ते चले जा रहे थे।

जब-तब मायादेवी डाक्टर से लुक-छिपकर मिलतीं। पराई पत्नी थीं, तब तक डाक्टर की उनके प्रति उत्सुकता और व्यवहार कुछ और ही था। अब जब उन्होंने अपने घर और पति को त्याग दिया तथा तलाक की कानूनी कार्यवाहियां करने लगीं, तब उनके विचारों में परिवर्तन और उलझन होने लगी। उनके कायर और चरित्रहीन मन में भय और आशंका ने घर कर लिया। वे सोचने लगे—ऐसा करना क्या ठीक होगा। अब इतने दिन बाद विमला-देवी की ओर ध्यान देने का उन्हें समय मिला। यदि वे मायादेवी से विवाह करते हैं तो विमलादेवी को तो उन्हें त्यागना ही होगा। यद्यपि कभी उन्होंने अपनी पत्नी से प्रेमपूर्वक व्यवहार नहीं किया था, पर इस अदल-बदल का प्रश्न आने पर उनके मन की उलझनें बढ़ गईं। कुछ देर के लिए प्रेम का खुमार ठण्डा पड़ गया।

परन्तु बात अब बहुत आगे बढ़ चुकी थी। एक दिन मालती-देवी के मकान में गम्भीर बातचीत हुई। बातचीत में मालती-देवी, मायादेवी, डाक्टर कृष्णगोपाल तथा वकील साहब उप-स्थित थे।

वकील साहब कह रहे थे—

'हिन्दू का, हिन्दू धर्म विवाह पद्धति पर विवाहित स्त्रियों की परुष संतति के उत्तराधिकार से सम्बन्धित सिर्फ कानूनी सत्ता है। हिन्दू स्त्रियों के अधिकारों की मीमांसा उसमें गौण है—जो आज-कल की सुशिक्षिता और आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करने वाली, साथ ही हिन्दू सभ्यता और संस्कृति की मर्यादा पालन

करने वाली स्त्री के किए अपर्याप्त है। इसीलिए हिन्दू कोड कानून की सहायता लेनी पड़ी। इस कानून की मंशा मुख्यतया हिन्दू स्त्री की संतति के अधिकारों के लिए नहीं—प्रत्युत सीधे स्त्रियों के अधिकारों के लिए है। ये अधिकार सामाजिक और आर्थिक दोनों हैं।'

डाक्टर ने कहा—'किंतु अब तक जिस प्रकार चल रहा था—वैसे ही चलना क्या बुरा था। एक पत्नी के रहते हुए भी दूसरी पत्नी रखी जा सकती है। हिन्दू लॉ इस मामले में बाधक नहीं।'

'जी हां, बाधक था। इसीसे तो यह कानून बनाना पड़ा। जब तक ऐसे कानूनी संशोधन हिन्दुओं में नहीं हुए तब तक सुशिक्षित परिवार में, जो हिन्दू संस्कृति के भी कायल हैं तथा स्त्रियों के सामाजिक समानाधिकार भी चाहते हैं, दोनों प्रकार के विवाहों का रिवाज-सा पड़ गया था। और आप देखते ही हैं कि इधर कुछ दिनों से सभ्य परिवारों में हिन्दू-पद्धति पर विवाह होने के साथ ही, सिविल मैरिज विधान से भी विवाह किए जाते थे।'

'तो कानूनी, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से दोनों प्रकार से शादी करने में तो कोई नुक्स न था।'

'बहुत था। स्त्रियों के अधिकारों की ठीक-ठीक मर्यादा का पालन नहीं होता था।'

'किंतु हिन्दू विवाह पद्धति में अब क्या अन्तर पड़ गया?'

' हिन्दू विवाह की तीन मर्यादाएं हैं और चार विधि। इनके बिना हिन्दू विवाह सम्पूर्ण नहीं माना जाता। इनके सिवा लोक प्रचलित रसूम भी बहुत हैं। वे तीन मर्यादाएं हैं—

१. पति-पत्नी का व्यक्तिगत शारीरिक और मानसिक जीवन सम्बन्ध और उनका सामाजिक दायित्व।

२. पति-पत्नी का एक-दूसरे के परिवार और सम्बन्धियों से सम्बन्ध और उनकी मर्यादा।

३. पति और पत्नी का आध्यात्मिक अविच्छिन्न जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध।

'इन्हीं मर्यादाओं पर हिन्दू-विवाह विधि निर्भर थी। आप अच्छी तरह समझ सकते हैं, कि ये सारे ही आधार आध्यात्मिक हैं, और उनका आजकल के भौतिक जीवन से मेल नहीं खाता था। इसीसे यह आवश्यकता पड़ी। सहस्रों वर्षों के बाद अब पति-पत्नी के संबंधों का नया अध्याय शुरू हुआ है, जो दोनों को समान अधिकार देता है। अब तक तो स्त्री पति की गुलाम थी, सम्पत्ति थी, दौलत थी, जिंदा दौलत!'

'अंधेर करते हैं आप, जिंदा दौलत कैसे? हम लोग तो स्त्रियों को वह मालिकाना अधिकार देते हैं कि घर-बार सबकी मालिकिन उसीको बना देते हैं।'

वकील साहब हंसकर बोले—'किंतु उसी प्रकार, जैसे बैंक का क्लर्क बैंक के रुपये-पैसे और हिसाब-किताब का मालिक रहता है। जनाब, आप इस बात पर चौंकते हैं कि मैंने कह दिया कि स्त्री को आप दौलत समझते हैं। आप क्या उन्हें 'स्त्री रत्न' नहीं कहते? क्या आपके धर्मराज युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए के दांव पर नहीं लगा दिया था। सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने अपनी स्त्री को कर्जा चुकाने के लिए भेड़-बकरी की भांति बीच बाजार में नहीं बेच दिया था?'

वकील साहब खूब जोश में जा रहे थे, परंतु मालतीदेवी ने उन्हें बीच ही में रोककर कहा—'कृपया मतलब की बात पर आइए। अभी बहस रहने दीजिए।'

वकील साहब ने कहा—

'अच्छी बात है। मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि कानून आपके हक में है और मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूं। केवल फीस का सवाल है, सो आपने हल ही कर दिया। यह भी सम्भव है कि

फीस का सवाल कभी उठे ही नहीं।' वकील साहब ने मायादेवी की ओर घूरकर देखा, फिर हंस दिया।

मायादेवी ने कहा—'फीस की बात बार-बार क्यों उठाते हैं? आप सिर्फ कानून की बात कीजिए।'

'कह चुका कि कानून आपके हक में है, अब आप यह विचार लीजिए कि आप क्या अपने पति से विच्छेद करने पर आमादा हैं?'

'मैं बिलकुल आमादा हूं।'

'अच्छी तरह सोच लीजिए श्रीमतीजी, आगे-पीछे की सभी बाधाओं पर विचार कर लीजिए।'

'और बाधा क्या है?

'आपके पतिदेव उज्र कर सकते हैं।'

'मैं उनका कोई उज्र न सुनूंगी।'

'आपकी सन्तान का भी प्रश्न है।'

'मुझे सन्तान से कोई वास्ता नहीं।'

अब मालतीदेवी ने बीच में उन्हें रोककर कहा—'ठहरिए डाक्टर साहब, मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहती हूं—क्या आप श्रीमती मायादेवी से विवाह करने को तैयार हैं?'

डाक्टर उलझन में पड़ गए। उन्होंने ज़रा धीमे स्वर में वकील साहब से पूछा—'आपका क्या ख्याल है कि इसमें मुझे कुछ बाधा होगी?'

'बहुत बड़ी बाधा हो सकती है। पहली बात तो यह है कि आपको अपनी पूर्व पत्नी का त्याग करना होगा।'

'यह क्या अत्यन्त आवश्यक है?'

'अनिवार्य है।'

'परन्तु यदि वह इन्कार करे?'

'तो आपके लिए दो मार्ग हैं। आप या तो उन्हें दोषी ठहराएं

था उन्हें उनके भरण-पोषण के लिए मुंहमांगा धन दें।'

'दोषी कैसे ?'

'दुराचार की।'

डाक्टर के मन में कहीं मर्मान्तक चोट लगी। भला विमला जैसी सती-साध्वी पर दुराचार का दोष कैसे लगाया जा सकता है। उन्होंने कहा—'मैं उसे उचित भरण-पोषण देने को तैयार हूं।'

यह कहकर डाक्टर उदास हो गए और उनका मन बेचैन हो हो गया।

मायादेवी ने इस बात को भांप लिया। उसके आत्मसम्मान और अहंभाव पर कहीं चोट लगी। उसने कहा—'वकील साहब, मेरे इस मामले से डाक्टर साहब के मामले का क्या सम्बन्ध है ?'

'कुछ भी नहीं।'

मालतीदेवी ने कहा—'कुछ भी नहीं कैसे, इसीलिए तो तुम अपना घर त्याग रही हो—इसे क्यों छिपाती हो ?'

'मैं किसी पर बोझ बनना पसन्द नहीं करती, मैं केवल स्वतन्त्र जीवन चाहती हूं।' मायादेवी ने उदास भाव से कहा।

वकील साहब ने उत्साहित होकर कहा—'ठीक है, ठीक है, फिर मायादेवी जैसी पत्नी जिसके भाग्य में हो वह तो स्वयं ही धन्य हो जाएगा।'

'मेरा अभिप्राय केवल यही है कि पुरुषों ने जो सैकड़ों वर्ष से स्त्रियों को साहस, ज्ञान और संगठन से रहित कर रखा है, उन्हें अपनी वासना की दासी और बच्चे पैदा करने की मशीन बना रखा है, यह न होना चाहिए। उनका एक पृथक् अस्तित्व है। मैं अपने उदाहरण से यह दिखाना चाहती हूं। मैं चाहती हूं कि पुरुष स्त्रियों की शक्ति का भरोसा करें। और वे प्यार के नाम पर उन पर ज़ुल्म न कर सकें।'

मालती ने कहा—'मायादेवी, यह सब तो ठीक है। पर देखो, आदर्श के नाम पर व्यवहार को मत भूलो। इस काम को व्यावहारिक दृष्टि से देखो। मैं साफ-माफ डाक्टर साहब से पूछती हूं कि मायादेवी का पूर्व पति से विच्छेद होने पर आप उससे तुरन्त विवाह करेंगे ?'

'मुझे उज्र नहीं है, पर विमलादेवी का मसला कैसे हल होगा ?'

'उसे आपको त्यागना होगा।'

'और लड़की को ?'

'उसका निर्णय अदालत के अधीन है।'

'पर यदि विमलादेवी ने विरोध किया ?'

'तो आपको उससे लड़ना होगा, आपको हर हालत में उसे त्यागना होगा। आप पशोपेश मत कीजिए। जो कहना हो, साफ-साफ कहिए।'

'तो मालतीदेवी, विमला से आप ही मिलकर मामला तय कर लीजिए। आप जो निर्णय करें मुझे स्वीकार होगा। सम्भव है कोई आपसी समझौता ही हो जाए।'

'अच्छी बात है। मैं उससे मिलूंगी। परन्तु यह तय है कि दोनों विच्छेद के मामले एक साथ ही कोर्ट में जाएंगे।'

'ऐसा ही सही।' डाक्टर ने गम्भीरता से जवाब दिया।

वकील साहब ने कहा—'यह और भी अच्छा है। जैसा निर्णय हो, वह आप तय कर लीजिए।'

इसके बाद यह मजलिस बर्खास्त हुई।

१६

इस बातचीत के बाद डाक्टर कृष्णगोपाल ने घर आना-जाना और विमलादेवी से मिलना बन्द कर दिया। अवसर पाकर मालतीदेवी ने विमलादेवी से उनके घर जाकर मुलाकात की। दोनों में इस प्रकार बातचीत प्रारम्भ हुई।

मालतीदेवी ने प्रारम्भिक शिष्टाचार के बाद कहा—'मैं आपके पास अप्रिय संदेश लाई हूं विमलादेवी, नहीं जानती—कैसे कहूं।'

'कुछ-कुछ तो मैं समझ ही गई हूं। परन्तु आपको जो कहना है, वह खुलासा कह डालिए।'

'परन्तु आपको दुःख होगा।'

'स्त्री के सुख-दुःख से तो आप परिचित हैं ही मालतीदेवी। आप भी तो स्त्री हैं। स्त्री का सुख-दुःख स्त्री ही ठीक-ठीक जान सकती है, फिर आपको संकोच क्यों?'

'सोचती हूं कैसे कहूं?'

'न कहने से दुःख तो टलेगा नहीं।'

'यह तो ठीक है।'

'फिर आपको जो कहना है, कह दीजिए।'

'मैं आपके पति के पास से समझौता करने आई हूं।'

'आप क्यों आई हैं?'

'आपके पति के अनुरोध से।'

'परन्तु अपने पति के साथ कोई समझौता करने के लिए पत्नी को किसी तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। पति-पत्नी तो अपने जीवन के सुख-दुःख के साथी-साझीदार हैं। किसी बात पर यदि उनमें विवाद उठ खड़ा हुआ तो वे आपस में मिलकर ही समझौता कर सकते हैं, किसी मध्यस्थ के द्वारा नहीं।'

'परन्तु परिस्थिति ऐसी आ पड़ी है, कि मुझे मध्यस्थ बनना ही पड़ा।'

'किंतु मैंने तो आपको मध्यस्थ बनाया नहीं।'

'आपके पति ने बनाया है।'

'किंतु मैंने नहीं, जब तक हम दोनों समान भाव से आपको मध्यस्थ न बनाएं आप कैसे मध्यस्थ बन सकती हैं!'

'तो क्या आप मुझसे बातचीत करना ही नापसंद करती हैं।'

'जी नहीं, आपको जो कहना है कह दीजिए, मैं आपको अपने पति का संदेशवाहक समझकर आपकी बात सुनूंगी। परन्तु समझौते की यदि नौबत पहुंची तो वह मेरे और उनके बीच प्रत्यक्ष ही होगा। किसी मध्यस्थ के द्वारा नहीं।'

'तब संदेश ही सुन लीजिए। आपके पति ने आपको त्यागने का संकल्प कर लिया है, वे आपको तलाक दे रहे हैं।'

'मैंने आपका संदेश सुन लिया।'

'आपको इस सम्बन्ध में कुछ कहना है?'

'जो कहना है उन्हीं से कहूंगी, वह भी तब, जब वे सुनना चाहेंगे, नहीं तो नहीं।'

'किन्तु क्या आप अपने पति से लड़ेंगी?'

'जी नहीं।'

'आपके पति, यदि आप उनसे न लड़ें और समझौता कर लें तो वे आपको यह मकान और समुचित मासिक वृत्ति देने को तैयार हैं।'

'मैं तो पहले ही कह चुकी हूं कि इस सम्बन्ध में मैं आपसे कोई बात करना पसन्द नहीं करती।'

'किन्तु बहन, मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए यहां आई हूं।'

'इसके लिए मैं आपकी आभारी हूं।'

'आप भली भांति जानती हैं, कि यह स्त्रियों की स्वाधीनता

का युग है। आप भी इस बात से इन्कार न कर सकेंगी कि जिन पति-पत्नियों में परस्पर एकता के भाव नहीं, उनका विच्छेद हो जाना ही सुखकर है।'

'मेरे विचार कुछ दूसरे ही हैं और वे मेरी शिक्षा और संस्कृति पर आधारित हैं। मैं विश्वास करती हूं कि पति-पत्नी का सम्बन्ध उसी प्रकार अटूट है जैसे माता और पुत्र का, पिता और पुत्र का, तथा अन्य सम्बन्धियों का। वह जो अपने पितृ-कुल को त्यागकर पति-कुल में आई है तो इधर-उधर भटकने के लिए नहीं, न ही अपनी जीवन मर्यादा समाप्त करने के लिए। रही एकता न रहने की बात, सो पिता-पुत्र, माता-पुत्र में भी बहुधा मतभेद होता है, लड़ाइयां होती हैं, मुकदमेबाजी होती हैं, बोलचाल भी बन्द रहती है, फिर भी यह नहीं होता कि वे अब माता-पिता या पुत्र-पुत्री नहीं रहे। कुछ और हो गए।'

'परन्तु पति-पत्नी की बात जुदा है, विमलादेवी।'

'निस्सन्देह, यह सम्बन्ध पिता-माता-पुत्र के सम्बन्ध से कहीं अधिक घनिष्ठ और गम्भीर है। पुत्र, माता-पिता के अंग से उत्पन्न होकर दिन-दिन दूर होता जाता है। पहले वह माता के गर्भ में रहता है, फिर उसकी गोद में, इसके बाद घर के आंगन में, पीछे आंगन के बाहर और तब सारे विश्व में वह घूमता है। परन्तु पत्नी दूर से पति के पास आती है, वह दिन-दिन निकट होती जाती है। उनके दो शरीर जब अति निकट होते हैं तब उससे तीसरा शरीर सन्तान के रूप में प्रकट होता है, जो दोनों के अखंड संयोग का मूर्ति-चिह्न है। अब आप समझ सकती हैं कि पति-पत्नी विच्छेद का प्रश्न उठ ही नहीं सकता।'

'तो आप क्या यह कहती हैं कि यदि पति-पत्नी दोनों के प्रकृति-स्वभाव न मिलें, और दोनों के जीवन भार स्वरूप हो जाएं तो भी वे परस्पर उसी हालत में रहें। क्या जीवन को सुखी

बनाना उन्हें उचित नहीं है।'

'यदि चाहे भी जिस उपाय से केवल जीवन को सुखी बनाने को ही जीवन का ध्येय मन लिया जाए तो फिर चोर, डाकू, ठग, अनीतिमूलक रीति से जो धनार्जन करते हैं, शराब पीकर और वेश्यागमन करके सुखी होना समझते हैं, उन्हें ही ठीक मान लेना चाहिए। पर मेरा विचार तो यह है कि सुख-दुःख जीवन के गौण विषय हैं। जोवन का मुख्य आधार कर्तव्य-पालन है। मनुष्य को अपने जीवन में धैर्यपूर्वक कर्तव्य-पालन करना चाहिए। कर्तव्य ही मनुष्य-जीवन की चरम मर्यादा है, इसीकी राह पर चलकर बड़े-बड़े महापुरुषों ने सुख-दुःख की राह समाप्त की है, मेरा भी आदर्श वही है।'

'परन्तु दुर्भाग्य से आपके पति के ऐसे विचार नहीं हैं।'

'तो मैं अपनी शक्तिभर उनसे लड़ती रहूंगी। अपने मार्ग से हटूंगी नहीं।'

'यदि वे आपको त्याग दें ?'

'पर मैं तो उन्हें त्यागूंगी नहीं—त्याग सकती भी नहीं।'

'क्या आप अपने पति से संतुष्ट हैं ? क्या आप उन्हें संतुष्ट रख सकी हैं ?'

'इसका हिसाब-किताब तो मैंने कभी रखा नहीं। परन्तु मैंने ईमानदारी से सदा अपना कर्तव्य-पालन किया है।'

'और उन्होंने ?'

'उनकी वे जानें।'

'आपके भी कुछ अधिकार हैं विमलादेवी।'

'अधिकारों पर तो मैंने कभी विचार ही नहीं किया।'

'पर अब तो करना होगा।'

'नहीं करूंगी।'

'पर आपके पति अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे।'

'मैं तो अपना कर्तव्य-पालन करती रहूंगी।'

'कब तक ?'

'जब तक जीवित हूं।'

'यदि वे आपको त्याग दें ?'

'तो भी मैं उन्हें नहीं त्यागूंगी।'

'परन्तु कानून तलाक को स्वीकार कर दे तो ?'

'तो भी नहीं।'

'क्या आप कानून के विरुद्ध लड़ेंगी ?'

'लड़ने की मुझे आवश्यकता ही नहीं है।'

'यदि वे अपना दूसरा विवाह करें ?'

'वे जो चाहे करें।'

'आप और कुछ कहना चाहती हैं ?'

'नहीं।'

'उन्होंने कुछ रुपया मेरे द्वारा आपके पास भेजा है, आप लेंगी ?'

'नहीं लूंगी।'

'क्यों ?'

'उनका धन मेरा ही है, उसे आपके हाथ से क्यों लूंगी ? हां, देना हो तो आपको प्रसन्न मन से दूंगी।'

'क्षमा कीजिए, आप अव्यावहारिक हैं। मैं आपको सहायता देने के विचार से आई थी।"

'मैं आपको धन्यवाद देती हूं।'

'खैर, जब कभी आपको मेरी सहायता की आवश्यकता हो—आप मुझे याद कर सकती हैं।'

'आपकी कृपा के लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं।'

मालतीदेवी खिन्न मन उठकर चल दीं। जलपान का अनुरोध उन्होंने नहीं माना।

१७

मायादेवी और डाक्टर कृष्णगोपाल दोनों ही के तलाक के मुकदमे अदालत में दाखिल कर दिए गए। मायादेवी ने पति पर अत्याचार, अयोग्यता तथा अनीतिमूलक व्यवहार के आरोप लगाए। मास्टर साहब ने क्षोभ और दुःख के कारण जवाबदेही नहीं की। मायादेवी को तलाक मिल गया। परन्तु इसपर जितना भी मायादेवी को साधुवाद, धन्यवाद और बधाइयां दी जाने लगीं उतना ही उनका शोक और व्यग्रता बढ़ती गई। रह-रहकर पति की निरीह, नैराश्य-मूर्ति उनके नेत्रों में घूम जाती, पुत्री की पीड़ा से भी वह बेचैन हो जातीं। वह जितना अपने मन को प्रबोध देतीं, भावी सुख का चित्र खींचतीं, उतना ही उनका मन निराशा से भर जाता।

डाक्टर कृष्णगोपाल की तसल्ली और आदर-सत्कार उसे अब उतना उल्लासवर्द्धक नहीं दीख रहा था। तथा रह-रहकर उसे अपना घर, अपना पति, और अपनी पुत्री याद आ रही थी। वह खोई-सी रहने लगी जैसे उसके सब आश्रय नष्ट हो गए हों। उनका मन चिन्ता, घबराहट और उदासी से भर गया।

डाक्टर कृष्णगोपाल के मुकदमे में विमलादेवी ने अदालत में उपस्थित होकर जज से मनोरंजक वार्तालाप किया।

जज ने पूछा—'श्रीमती विमलादेवी, आपके पति डाक्टर कृष्णगोपाल ने आपके विरुद्ध तलाक का मुकदमा दायर किया है! आपको कुछ उज्र हो तो पेश कीजिए।'

'आप किसलिए मेरा उज्र पूछते हैं?'

'इसलिए कि आपको उज्र करने का कानूनन अधिकार है।'

'मैं एक हिन्दू गृहस्थ की पत्नी हूं। मैं अधिकार नहीं चाहती, मैं कर्तव्य-पालन करना चाहती हूं। मेरे पति जब जहां जिस हालत

में रहेंगे—मैं अपना कर्तव्य उनके प्रति पालन करती रहूंगी।'

'मेरा अभिप्राय यह है कि तलाक स्वीकार होने पर…'

'हिन्दू स्त्री प्रदत्ता है। उसे तलाक स्वीकार करने का अधिकार नहीं है।'

'स्वीकार न करने पर भी कानूनन उसका सम्बन्ध पति से टूट जाएगा।'

'केवल शरीर-सम्बन्ध। परन्तु हिन्दू स्त्री का पति से केवल शरीर-सम्बन्ध ही नहीं है। लाखों करोड़ों-विधवाएं आज भी पति के मर जाने पर जीवनभर वैधव्य धारण कर उसीके नाम पर बैठी रहती हैं।'

'परन्तु यह तो अन्याय है विमलादेवी।'

'आप न्याय को कानून के तराजू पर तौलते हैं, इसलिए आपको यह अन्याय प्रतीत होता है। यदि इसे धर्म की तराजू पर तौला जाए तो यह तप है। और तप एक पुण्य है, और पुण्य कदापि अन्याय नहीं।'

'परन्तु यह पुण्य या तप जो कुछ भी आप समझें, पुरुष तो करते नहीं।'

'वे करें, उन्हें रोका किसने है?'

'परन्तु वे करते तो नहीं।'

'हां, नहीं करते। इसका कारण यह है कि उनमें तप करने की, पुण्य करने की शक्ति नष्ट हो गई है। वे बेचारे तप-पुण्य कर ही नहीं सकते। उन्होंने शरीरबल उपार्जन किया—हमने आध्यात्मिक। उन्होंने व्यावहारिक दुनिया को अपनाया, हमने अपनाया आदर्श और निष्ठा की दुनिया को।'

'परन्तु एक नवयुवती विधवा होने पर पति के नाम पर जीवन-भर विधवा होकर बैठी रहे, इसे आप पुण्य कैसे कहती हैं?'

'इसे आप नहीं समझ सकते। इस प्रश्न का उत्तर कानून नहीं

दे सकता।'

'तो आप उत्तर दीजिए।'

'उत्तर दे सकती हूं, पर आप चूंकि पुरुष हैं, समझ नहीं सकेंगे।'

'फिर भी आप कहिए।'

'पति-पत्नी सम्बन्ध में स्त्रियों और पुरुषों के आदर्शों में अन्तर है। पुरुष के लिए दाम्पत्य का अर्थ है उपभोग।'

'और स्त्री के लिए?'

'संयम! और यह नैसर्गिक है, कृत्रिम नहीं। आप कानून, पुरुषों के लिए उनकी सम्पत्ति के लिए बना सकते हैं, और उन्हें लाभ पहुंचा सकते हैं। परन्तु स्त्रियों के लिए नहीं। कानून का अर्थ है—शान्तिपूर्वक उपभोग करो। लेकिन स्त्री पर कानून का नहीं—धर्म का शासन है। धर्म कहता है—संयम से पहले अपने को वश में करो—फिर संसार को।'

'क्या स्त्रियां वैधव्य से और खराब पतियों से दुःख नहीं पातीं?'

'पाती हैं, पुरुष भी खराब स्त्रियों से दुःख पाते हैं, सुख, दुःख मनुष्य की दुर्बुद्धि का भोग है। उनसे कैसे बचा जा सकता है?'

'परन्तु कानून तो जीवन में एक व्यवस्था कायम करता है।'

'सो करे।'

'तो कानून की दृष्टि में तलाक के बाद आप डा० कृष्णगोपाल की पत्नी न रहेंगी।'

'समझ गई। परन्तु मैं भी कह चुकी हूं कि मैं उनकी पत्नी ही रहूंगी। हां, एक बात है। अब तक मैंने पति के द्वारा दिया गया दुःख भोगा और अब कानून के द्वारा दुःख भोगूंगी।'

'आप दूसरा विवाह करके सुखी हो सकती हैं।'

'परन्तु मुझे पुरुषों के इस सुख पर ईर्ष्या नहीं है, दया है।'

'खैर, तो आपका और आपके पति का पति-पत्नी सम्बन्ध

समाप्त हुआ। परन्तु आप जिस मकान में रहती हैं उसीमें उसी भांति रह सकती हैं। वह मकान आपके भूतपूर्व पति ने आपको दे दिया है तथा दस हजार रुपया आपके जीवन-निर्वाह के लिए दे दिया है। आपकी लड़की भी शादी होने तक आप ही के पास रहेगी। परन्तु उसकी शादी और शिक्षा का भार आप ही पर रहेगा। हां, उसका एक बीमा डाक्टर साहब ने कर दिया है। जब उसका विवाह होगा, तब वह दस हजार रुपया शादी के खर्च के लिए आपको और मिल जाएगा, क्या आपको कुछ कहना है।'

'जी नहीं।'

'तो आप जा सकती हैं।'

विमलादेवी चुपचाप चली आईं और डाक्टर कृष्णगोपाल छाती में तीर लगने से जैसे हिरन छटपटाता है, उस भांति की वेदना से तड़पते हुए, अपने नये आवास की ओर लौटे। उनकी आंखें झुकी हुई थीं, और लज्जा, ग्लानि और क्षोभ का जो प्रभाव इस समय वे अनुभव कर रहे थे, उसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी।

१८

तलाक हो जाने के बाद मायादेवी और डाक्टर कृष्णगोपाल दोनों परस्पर बहुत कम मिलते, मिलने पर भी गुम-सुम रहते, दोनों ही परस्पर मिलने पर एक-दूसरे को प्रसन्न करने की चेष्टा करते, परन्तु यह बात दोनों ही जान जाते कि यह चेष्टा स्वाभाविक नहीं है, कृत्रिम है। मायादेवी अभी मालतीदेवी के साथ ही रह रही थीं, और डाक्टर कृष्णगोपाल अपने दूसरे मकान में आ गए

थे। केवल उनका एक विश्वासी नौकर उनके साथ रहता था। एक गहरी उदासी की छाया हर समय उनके मन पर बनी रहती थी। और वे रह-रहकर ऐसा समझने लगते थे मानो उन्होंने कोई बड़ा जघन्य पाप-कर्म कर डाला हो। वास्तव में बात यह थी कि दोनों भयभीत से रहते थे, दोनों ही जैसे कुछ ऐसी घटना की प्रतीक्षा-सी कर रहे थे मानो कोई दुर्घटना घटने वाली हो।

'विवाह' एक ऐसा शब्द है—जिसके नाम से ही युवक-युवतियों के हृदय में नवजीवन और आनन्द की लहर उठने लगती है—परन्तु इतने संघर्ष और कठिन प्रयास के बाद जब दोनों की मिलन-बाधाएं खत्म हो गईं तो अब जैसे वह मिलन ही उनके लिए भय की वस्तु बन गई। परन्तु जैसे भय का सामना करने को मनुष्य साहस करता है उसी भांति दोनों ने साहस किया—और केवल चुने हुए मित्रों की उपस्थिति में दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह हो जाने पर दोनों ही ने ऐसा अनुभव किया मानो उनके शरीर में से रक्त की एक-एक बूंद निकाल ली गई हो।

मित्रों का आनन्दोत्सव और हा-हू जब समाप्त हो गया तो अन्त में एकान्त रात्रि में दोनों का एकान्त मिलन हुआ। इसे आप सुहागरात का मिलन कह सकते हैं, पर यह वह सुहागरात न थी जो प्रकृति की प्रेरणा का प्रतीक है, जहां जीवन में पहली बार बसंत विकसित होता है—यहां तो वर-वधू दोनों ही एक-एक संतति के जन्मदाता थे। पति एक दूसरी पत्नी का अत्याचारी पति था और स्त्री एक सीधे, सच्चे, निर्दोष पति की पत्नी थी।

स्वभावत: ये दोनों ही—निर्बुद्धि और पाशाविक प्रवृत्ति के हीन प्राणी न थे। विचारवान और सभ्य थे। यद्यपि डाक्टर को मद्यपान की आदत थी—और दुराचारी तथा वेश्यागामी भी था, परन्तु आज इस सुहागरात के एकान्त मिलन में उसकी सारी विलास-वासना जैसे सो गई थी। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था

मानो उसकी रगों में रक्त नहीं—बर्फ का पानी भरा हुआ है। यह जितना ही प्रसन्न और उत्साहित रहने की चेष्टा करता उतनी ही उसकी चेष्टायें हास्यास्पद और वीभत्स बन जाती थीं। अपनी साध्वी सुशीला पत्नी विमला देवीके प्रति अपने किए सब अन्याय मूर्तिमान होकर, जितना वह उन्हें भुलाना चाहता था—उतना ही उसके सम्मुख उसके मानस नेत्रों में आ घुसते थे। उसकी दशा मद्यप, उन्मत्त तथा शोकार्त मनुष्य के समान हो रही थी। उसे स्पष्ट सुनाई दे रहा था कि उसकी पुत्री चीत्कार करके बाबूजी-बाबूजी पुकार रही है। इस समय वह मायादेवी की ओर आंख उठाकर भी देखने का साहस न कर सकता था।

मायादेवी की दशा भी कुछ ऐसी ही थी। उसका मन हाहाकार कर रहा था। उसकी इच्छा हो रही थी कि गले में फांसी लगाकर मर जाए। विवाह काल में कुछ लोगों ने अशिष्ट व्यंग्य किया था—वह अब सैकड़ों बिच्छुओं की भांति डंक मारकर उसे तड़फा रहा था।

वह छिपी नजर से बीच-बीच में अपने नये पति की ओर देख लेती थी। उसे याद आ रहा था—यही वह आदमी है जो क्लब में मेरे सामने ही शराब पीता था। इस समय मायादेवी को इस नये पति के चेहरे में ऐसे अप्रिय और घृणा-उत्पादक भाव दीख रहे थे कि उसका मन उसके सामने से भाग जाने का हो रहा था। वह सोच रही थी—अपने त्यागे हुए पति की बात। आज तक कभी उन्होंने एक कड़ा शब्द उससे कहा नहीं, कभी उसने उनका क्रोध से भरा चेहरा देखा नहीं। कभी उसके पति ने शराब छुई नहीं। वह सदा अपनी सारी आमदनी उसीको देते। उसकी एक प्रकार से पूजा करते। वह सोचने लगी अपनी पहली सुहागरात की बात—फिर उसने आप-ही-आप भुनभुना कर कहा—'क्या यह आज की रात भी सुहागरात कही जा सकती है ? क्या यह शराबी,

दुराचारी और अपनी साध्वी पत्नी के साथ निर्मम अत्याचार करने वाला पुरुष उसके साथ वैसा ही कोमल भावुक बनकर रह सकेगा—जैसा उसका प्रथम पति था। परन्तु यह प्रथम और दूसरा क्या? पत्नी का पति एक ही है। क्या उसके जीवित रहते मैं दूसरे पुरुष को अपना अंग दिखलाऊंगी? स्वाधीन होने की आग में मैं अवश्य जल रही हूं—पर इसके लिए मैं अपने शरीर को अपवित्र करूं? नहीं, वह मैं न कर सकूंगी। नहीं कर सकूंगी। नहीं कर सकूंगी।' एकाएक उसे ज्ञात हुआ कि उसकी पुत्री ने उसके कण्ठ में हाथ डालकर पुकारा—मां, और जैसे उसने उसे उठाकर खिड़की की राह बीच सड़क पर फेंक दिया। वह एक चीख मारकर बेहोश हो गई।

यत्न करने पर उसे होश हुआ तो उसने अपने वस्त्र ठीक करके मुस्कराकर डाक्टर से कहा—'बैठ जाइए, अब मैं ठीक हूं।'

'तुमने तो मुझे डरा दिया।'

'समय ही ऐसा आ गया है, कि हम लोग अब एक-दूसरे से डरते हैं।'

परन्तु डाक्टर ने बात आगे नहीं बढ़ाई। वे पलंग पर लेट गए और आंखें मूंदकर अपना भविष्य सोचने लगे। कुछ देर बाद माया भी करवट फेरकर पड़ गई। दोनों ही थके हुए थे—शीघ्र ही उन्हें निद्रा देवी ने अपनी गोद में ले लिया।

प्रभात होने पर दोनों ने अपराधी मन लेकर अपनी-अपनी दिनचर्या प्रारम्भ की। एक-दूसरे को देखते और मन की भाषा प्रकट करने में असमर्थ रहते।

धीरे-धीरे दिन व्यतीत होते गए।

१६

दुर्भाग्य एक अपरिसीम और अपर्याप्त वस्तु है। वह मनुष्य के जीवन का बहीखाता है। उस बाहीखाते में मनुष्य के जीवन के पुण्य ही नहीं, चरित्र-दौर्बल्य और कुत्सा का एवं मानसिक कलुष का लेखा-जोखा आना-पाई तक हिसाब करके ठीक-ठीक लिखा जाता रहता है। लोग कहते तो यह हैं कि यह दुर्भाग्य मनुष्य पर लादा गया बोझ है। परन्तु सच पूछा जाए तो यह मनुष्य की पाप की कमाई की पूंजी ही है। पाप के विषय में भी एक बात कहूं, लोग पाप की गठरी को बहुत भारी बताते हैं। मेरी राय इससे बिल्कुल ही दूसरी है। वह न तो उतनी भारी ही है जिसे लादने को कुली या छकड़ा गाड़ी की आवश्यकता है, न वह—जैसा कि लोग कहते हैं—ऐसी ही है कि जो केवल मरने के बाद परलोक में ही खोली जाएगी, मरने तक उसे मनुष्य लादे फिरेगा। वह तो शरीर में हाथ-पैरों के बोझ के समान है जिसे आदमी बड़े चाव से लादे फिरता है, और कभी उकताता नहीं है। वह चाहे जब उसकी एक चुटकी का स्वाद ले लेता है और उसके तीखे और कड़वे स्वाद पर उसी तरह लट्टू है, जैसे एक अन्य नशे-पानी की चीजों के कुस्वाद पर। नशे-पानी की चीजों से पाप में केवल इतना ही अन्तर है कि नशे-पानी की चीजें महंगे मोल बिकती हैं, परन्तु पाप मनुष्य के जीवन के चारों ओर बिखरा पड़ा है और उसे जितना वह चाहे बटोरकर अपने कन्धों पर लाद लेने से रोकने के लिए कोई मनाही नहीं है। उस पर कोई चौकीदार-सिपाही पहरा नहीं दे रहा है। वह हवा-पानी से भी अधिक सस्ता और सुलभ है। इसीसे मानव स्वच्छ भाव से युग-युग के उसके सेवन का अभ्यासी रहा है। यह भी सत्य है कि पत्नी का पाप पति का दुर्भाग्य हो जाता है, और पति का पाप पत्नी का दुर्भाग्य होता है। इन्द्रियों की

भूख की ज्वाला इधर-उधर देखने ही नहीं देती। जो सुविधा से मिला, उसे खाया। पाप का व्यवसाय ही हिंस्र है, वहां कोमल भावुक जीवन कहां? स्त्रियों का सौभाग्य-दुर्भाग्य पुरुषों के सौभाग्य-दुर्भाग्य के समान क्षण में बदलने वाला नहीं।

तीन वर्ष बीत गए।

आंधी शान्त हो चुकी थी। मुर्झाए हुए पत्ते बिखर गए थे। डाक्टर का प्रेमभाव अब गायब था। अब वे उसे पूर्व की भांति क्लब में ले जाने में आना-कानी करते थे। उनका यह विवाह प्रेमजन्य नहीं, वासनामूलक था। माया का सारा ही मान बिखर चुका था। वह जो सुखी संसार देखना चाहती थी, वह उससे दिन-दिन दूर होता जा रहा था। वहां अब वेदना और सूनापन था।

उसे एक दिन अचानक ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने जो लिया है उसका भार कुछ बढ़ रहा है। थोड़े दिनों में संदेह मिट गया। उसने जो दिया था, वह सब बट्टेखाते गया, और उसने जो लिया उसके भार से वह एक दिन अधमरी हो गई।

उसने डाक्टर से कहा—

'यह बोझ बढ़ता ही जा रहा है। यह तुम्हारा प्रेमोपहार है।'

डाक्टर ने सिगरेट के धुएं का बादल बनाते हुए कहा—'चिन्ता न करो, चुटकी बजाते इस बोझ को कहीं कूड़े के ढेर में फेंक दिया जाएगा।'

पर बोझ उसे ढोना पड़ा। कूड़े के ढेर में नहीं फेंका गया। वह उसे ढोते-ढोते थक गई, पीली पड़ गई, कमजोर हो गई।

डाक्टर से जब बोझे की बात चलती, वह झुंझला उठता, खीझ उठता, डांट भी देता। उसे रोना पड़ा—पहले छिपकर,

फिर सिसक-सिसककर।

पश्चात्ताप तो उसे उसी क्षण से होने लगा था, जब डाक्टर ने बेमन से विवाह की स्वीकृति मालतीदेवी के सामने दी थी। अब उसका ध्यान रह-रहकर अपने सौम्य स्वभाव मास्टर साहब के मृदुल और अक्रोध स्वभाव पर जाता था। उसे बोध होने लगा कि मैंने अपनी मूर्खता से अपने लिए दुर्भाग्य बुलाया।

एक दिन उसे प्रतीत हुआ कि डाक्टर उसे कुछ खाने की दवा देने वाले हैं। वह संदेह और भय से कांप उठी। उसे अपने प्राण-नाश की भी चिन्ता उत्पन्न हो उठी। शाम को डाक्टर जब क्लब चले गए, उसने आत्मविश्वास पूरक साहस किया, और उस पर-घर को त्यागने की तैयारी की। उसने चादर ओढ़ी और शरीर को सावधानी से आच्छादित कर घर से बाहर हो गई।

दीवाली के दीये घरों में जल रहे थे, पर वह उनके प्रकाश से बचती हुई अंधकार में चलती ही गई।

२०

मास्टर साहब अपने घर में दीये जला, प्रभा को खिला-पिला बहुत-सी वेदना, बहुत-सी व्यथा हृदय में भरे बैठे थे। बालिका कह रही थी—बाबूजी ! अम्मा कब आएंगी ?

'आएगी बेटी, आएगी !'

'तुम तो रोज यही कहते हो। तुम झूठ बोलते हो बाबूजी।'

'झूठ नहीं बेटी; आएगी।'

'तो वह मुझे छोड़कर चली क्यों गई ?'

'......'

'आज दिवाली है बाबूजी ?'

'हां बेटी।'

'तुमने कितनी चीजें बनाई थीं—पूरी, कचौरी, रायता, हलुआ···'

'हां, हां, बेटी, तुझे सब अच्छा लगा ?'

'हां, बाबूजी, तुम कितनी खील लाए हो, खिलौने लाए हो—मैंने सब वहां सजाए हैं।'

'बड़ी अच्छी है तू रानी बिटिया।'

'यह सब मैं अम्मा को दिखाऊंगी।'

'दिखाना।'

'देखकर वे हंसेंगी।'

'खूब हंसेंगी।'

'फिर मैं रूठ जाऊंगी।'

'नहीं, नहीं, रानी बिटिया नहीं रूठा करतीं।'

'तो वह मुझे छोड़कर चली क्यों गई ?'

मास्टरजी ने टप से एक बूंद आंसू गिराया, और पुत्री की दृष्टि बचाकर दूसरा पोंछ डाला। तभी बाहर द्वार के पास किसी के धम्म से गिरने की आवाज आई।

मास्टरजी ने चौंककर देखा, गुनगुनाकर कहा—'क्या गिरा ? क्या हुआ ?'

वे उठकर बाहर गए, सड़क पर दूर खम्भे पर टिमटिमाती लालटेन के प्रकाश में देखा, कोई काली-काली चीज द्वार के पास पड़ी है। पास जाकर देखा, कोई स्त्री है। निकट से देखा, बेहोश है। मुंह पर लालटेन का प्रकाश डाला, मालूम हुआ माया है।

मास्टर साहब एकदम व्यस्त हो उठे। उन्होंने सहायता के लिए इधर-उधर देखा, कोई न था, सन्नाटा था। उन्होंने दोनों

बांहों में माया को उठाया और घर के भीतर ले आए। उसे चारपाई पर लिटा दिया।

बालिका ने भय-मिश्रित दृष्टि से मूर्च्छिता माता को देखा—कुछ समझ न सकी। उसने पिता की तरफ देखा।

'तेरी अम्मा आ गई बिटिया, बीमार है यह।' फिर माया की नाक पर हाथ रखकर देखा, और कहा—उस कोने में दूध रखा है, ला तो ज़रा।'

दूध के दो-चार चम्मच कण्ठ में उतरने पर माया ने आंखें खोलीं। एक बार उसने आंखें फाड़कर घर को देखा, पति को देखा, पुत्री को देखा, और वह चीख मारकर फिर बेहोश हो गई।

मास्टरजी ने नब्ज देखी, कम्बल उसके ऊपर डाला। ध्यान से देखा, शरीर सूखकर कांटा हो गया है, चेहरे पर लाल-काले बड़े-बड़े दाग हैं, आंखें गढ़े में धंस गई हैं। आधे बाल सफेद हो गए हैं। पैर कीचड़ और गन्दगी में लथपथ और···और···और वे दोनों हाथों से माथा पकड़कर बैठ गए।

प्रभा ने भयभीत होकर कहा —'क्या हुआ बाबूजी ?'

'कुछ नहीं बिटिया !' उन्होंने एक गहरी सांस ली। माया को अच्छी तरह कम्बल उढ़ा दिया।

इसी बीच माया ने फिर आंखें खोलीं। होश में आते ही वह उठने लगी। मास्टरजी ने बाधा देकर कहा—'उठो मत, प्रभा की मां, बहुत कमजोर हो। क्या थोड़ा दूध दूं ?'

माया जोर-जोर से रोने लगी। रोते-रोते हिचकियां बंध गईं।

मास्टरजी ने घबराकर कहा—'यह क्या नादानी है, सब ठीक हो जाएगा। सब ठीक···।'

'पर मैं जाऊंगी, ठहर नहीं सकती।'

'भला यह भी कोई बात है, तुम्हारी हालत क्या है, यह तो देखो।'

माया ने दोनों हाथों से मुंह ढक लिया। उसने कहा—'तुम क्या मेरा एक उपकार कर दोगे! थोड़ा जहर मुझे दे दोगे! मैं वहां सड़क पर जाकर खा लूंगी।'

'यह क्या बात करती हो प्रभा की मां! हौसला रखो, सब ठीक हो जाएगा।'

'हाय मैं कैसे कहूं?'

'आखिर बात क्या है?'

'यह पापिन एक बच्चे की मां होने वाली है, तुम नहीं जानते।'

'जान गया प्रभा की मां, पर घबराओ मत, सब ठीक हो जाएगा।'

'हाय मेरा घर!'

'अब इन बातों की इस समय चर्चा मत करो।'

'तुम क्या मुझे क्षमा कर दोगे?'

'दुनिया में सब कुछ सहना पड़ता है, सब कुछ देखना पड़ता है।'

'अरे देवता, मैंने तुम्हें कभी नहीं पहचाना!'

'कुछ बात नहीं, कुछ बात नहीं, एक नींद तुम सो लो, प्रभा की मां।'

'आह मरी, आह पीर।'

'अच्छा, अच्छा! प्रभा बिटिया, तू ज़रा मां के पास बैठ, मैं अभी आता हूं बेटी। प्रभा की मां, घबराना नहीं, पास ही एक दाई रहती है, दस मिनट लगेंगे। हौसला रखना।' और वह कर्तव्यनिष्ठ मास्टर साहब, जल्दी-जल्दी घर से निकलकर, दीपावली की जलती हुई अनगिनत दीप-पंक्तियों को लगभग

अनदेखा कर तेज़ी से एक अंधेरी गली की ओर दौड़ चले।

'चरण-रज दो मालिक !'

'वाहियात बात है, प्रभा की मां।'

'अरे देवता, चरण-रज दो, ओ पतितपावन, ओ अशरण-शरण, ओ दीनदयाल, चरण-रज दो।'

'तुम पागल हो, प्रभा की मां।'

'पागल हो जाऊंगी। तीन साल में दुनिया देख ली, दुनिया समझ डाली; पर इस अन्धी ने तुम्हें न देखा, तुम्हें न समझा।'

'यह तुम फालतू बकबक करती रहोगी तो फिर ज्वर हो जाने का भय है। बिटिया प्रभा, अपनी मां को थोड़ा दूध तो दे।'

'मैं भैया को देखूंगी, बाबूजी।'

माया ने पुत्री को छाती से लगाकर कहा, 'मेरी बच्ची, अपने बाप की बेटी है—इस पतिता मां को छू दे जिससे वह पापमुक्त हो जाए।'

'नाहक बिटिया को परेशान मत करो, प्रभा की मां।'

'हाय, पर मैं तुम्हें मुंह कैसे दिखाऊंगी ?'

'प्रभा की मां, दुनिया में सब कुछ होता है। तुमने इतना कष्ट पाया है, अब समझ गई हो। उन सब बातों को याद करने से क्या होगा ? जो होना था हुआ, अब आगे की सुध लो। हां, अब मुझे तनखा साठ रुपये मिल रही है, प्रभा की मां। और ट्यूशन से भी तीस-चालीस पीट लाता हूं। और एक चीज देखो, प्रभा ने खुद पसन्द करके अपनी अम्मा के लिए खरीदी थी, उस दिवाली को।

वे एक नवयुवक की भांति उत्साहित हो उठे, बक्स से एक रेशमी साड़ी निकाली और माया के हाथ में देकर कहा—'तनिक देखो तो।'

माया ने हाथ बढ़ाकर पति के चरण छुए। उसने रोते-रोते कहा—'मुझे साड़ी नहीं, गहना नहीं, सुख नहीं, सिर्फ तुम्हारी शुभ दृष्टि चाहिए। नारी-जीवन का तथ्य मैं समझ गई हूं, किन्तु अपना नारीत्व खोकर। वह घर की सम्राज्ञी है, और उसे खूब सावधानी से अपने घर को चारों ओर से बन्द करके अपने साम्राज्य का स्वच्छन्द उपभोग करना चाहिए, जिससे बाहर की वायु उसमें प्रविष्ट न हो, फिर वह साम्राज्य चाहे भी जैसा—लघु, तुच्छ, विपन्न, असहाय क्यों न हो।'

मास्टर साहब ने कहा—प्रभा की मां, तुम तो मुझसे भी ज्यादा पण्डिता हो गई। कैसी-कैसी बातें सीख लीं तुमने प्रभा की मां!'—वे ही-ही करके हंसने लगे।

उनकी आंखों में अमल-धवल उज्ज्वल अश्रु-बिन्दु झलक रहे थे।

□□

मरम्मत

'दशहरे की छुट्टियों में भैया घर आ रहे हैं, उनके साथ उनके एक मित्र भी हैं, जब से यह सूचना मिली है घरभर में आफत मची है। कल दिनभर नौकर-चाकरों की कौन कहे, घर के किसी आदमी को चैन नहीं पड़ा। दीना की मां को चार दिन से बुखार आ रहा था, पर उस बेचारी पर भी आफत का पहाड़ टूट पड़ा। दिनभर गरीब चूल्हे पर बैठी रही। कितने पकवान बनाए गए, कितनी जिन्स तैयार की गई हैं बाप रे ! भैया न हुए भीमसेन हुए। दुलारी उनके लिए, और उनके उन निखट्टू दोस्त के लिए कमरा झाड़ रही है, रामू और रग्घू वहां रूमाल, तौलिए, सुराही, चाय के सेट, चादर, बिछौने और न जाने क्या-क्या सरंजाम जुटाते रहे। रातभर खटखट रही। अभी दिन भी नहीं निकला और बाबूजी आंगन में खड़े गरज रहे हैं। सईस को गालियां सुनाई जा रही हैं—अभी तक गाड़ी स्टेशन पर नहीं गई। फिटिन भी जानी चाहिए और विक्टोरिया भी। कहो जी, अकेला सईस दो-दो गाड़ियां कैसे ले जाएगा। फिर भैया ऐसे कहां के लाट साहब हैं, एक गाड़ी क्या काफी नहीं ? उनके वे दोस्त भी कोई आवारागर्द मालूम देते हैं, छुट्टियों में अपने घर न जाकर पराये घर आ रहे हैं, ईश्वर जाने उनका घर है भी या नहीं।'

रजनी आप-ही-आप बड़बड़ा रही थी। सूरज निकल आया था, धूप फैल गई थी, पर वह अभी बिछौने ही पर पड़ी थी। उसके कमरे में कोई नौकर-नौकरानी नहीं आई थी, इसीसे वह बहुत नाराज हो गई थी। एक हल्की फिरोजी ओढ़नी उसके सुनहरे

शरीर पर अस्तव्यस्त पड़ी थी, चिकने और घूंघर वाले बाल चांदी के समान मस्तक पर बिखर रहे थे। बड़ी-बड़ी आंखें भरपूर नींद का सुख लूटकर लाल हो रही थीं। गुस्से से उसके होंठ सम्पुटित हो गए थे, भौंहों में बल थे, वह पलंग पर औंधी पड़ी थी। एक मासिक पत्रिका उसके हाथ में थी। वह तकिये पर छाती रक्खे अनमने भाव से उसके पन्ने उलट रही थी।

रजनी की मां का नाम सुनन्दा था। खूब मोटी ताजी, गुदगुदी ठिगनी स्त्री थीं। जब वे फुर्ती से काम करतीं तो उनका गेंद की तरह लुढ़कता शरीर एक अजब बहार दिखाता था। वह एक सुगृहिणी थीं, दिनभर काम में लगी रहती थीं। उनके हाथ बेसन में भरे थे और पल्ला धरती में लटक रहा था। उन्होंने जल्दी-जल्दी आकर कहा—'वाह री रानी, बेटी तेरे ढंग तो खूब हैं। भैया घर में आ रहे हैं, दस काम अटके पड़े हैं और रानीजी पलंग पर पड़ी किताब पढ़ रहीं हैं। उठो ज़रा, रमिया हरामजादी आज अभी तक नहीं आई। ज़रा गुसलखाने में धोती, गमछा, साबुन सब सामान ठिकाने से रख दो—भैया आकर स्नान करेंगे। उठ तो बेटी! अरी, पराये घर तेरी कैसे पटेगी!'

रजनी ने सुनकर भी मां की बात नहीं सुनी, वह उसी भांति चुपचाप पड़ी रही। गृहिणी जाती-जाती फिर रुक गईं। उन्होंने कहा—'रजनी सुनती नहीं, मैं क्या कह रही हूं। भैया···।'

रजनी गरज उठी—'भैया···जब देखो, भैया, भैया आ रहे हैं तो मैं क्या करूं? छत से कूद पड़ूं? या पागल होकर बाल नोच डालूं? भैया आ रहे हैं या गांव में शेर घुस आया है? घरभर ने जैसे धतूरा खा लिया हो। भैया आते हैं तो आएं! इतनी आफत क्यों मचा रखी है?'

क्षणभर को गृहिणी अवाक् हो रहीं, उन्होंने सोचा भी न था कि रजनी भैया के प्रति इतना विद्रोह रखती है। भैया तो हर

बार ही पत्र में रजनी की बात पूछता है। आने पर वह अधिक देर तक उसीके पास रहता है, बातें करता है, प्यार करता है। उन्होंने क्रुद्ध दृष्टि से पुत्री की ओर देखकर कहा—"भैया का आना इतना दुख रहा है रजनी !'

"भैया का आना तो नहीं, तुम लोगों की यह हाय-हाय जरूर दुख रही है।'

'क्यों दुख रही है री ?

"भैया घर में आ रहे हैं तो इतनी उछल-कूद क्यों हो रही है ?'

'भैया घर में आ रहे हैं तो हो नहीं ? क्या मेरे दस-पांच हैं ? एक ही मेरी आंखों का तारा है। छः महीने में आ रहा है। परदेश में क्या खाता-पीता होगा, कौन जाने। उसे बड़ियां बहुत भाती हैं, मेरे हाथ की कढ़ी बिना उसे रसोई सूनी लगती है, आलू की कचौरी का उसे बहुत शौक है, यह सब इसीसे तो बना रही हूं। फिर इस बार आ रहे हैं उसके कोई दोस्त। रईस के बेटे होंगे। उनकी खातिर न करूं ?'

'करो फिर। मेरा सिर क्यों खाती हो ?'

'मैं सिर खाती हूं, अरी तेरा सिर तो इन किताबों ने ही खा डाला है। मां को ऐसे जवाब देती है ! दोपहर हो गया, पलंग से नीचे पैर नहीं देती। भैया के आने से पहले माथे पर बल पड़ गए हैं।'

रजनी ने वक्र दृष्टि से मां की ओर देखकर गुस्से में आकर छाती के नीचे का तकिया दीवार में दे मारा, मासिक पत्रिका फेंक दी। उसने तीखी वाणी में कहा—'मैं भी तो आई थी छः महीने में; तब तो इतनी धूम नहीं थी।'

'तू बेटी की जात है···बेटी-बेटा क्या बराबर हैं ?'

'बराबर क्यों नहीं हैं ?'

'अब मैं तुझसे मुंहजोरी करूं कि काम ?'

'काम करो। बेटियां पेट से थोड़े ही पैदा होती हैं। घूरे पर से उठाकर लाई जाती हैं। उनकी प्रतिष्ठा क्या, इज्जत क्या, जीवन क्या ? मर्द दुनिया में बड़ी चीज है। उनका सर्वत्र स्वागत है।'

रजनी रूठकर शाल को अच्छी तरह लपेटकर दूसरी ओर मुंह करके पड़ी रही, गृहिणी बकझक करती चली गईं।

उनका नाम था राजेन्द्र और मित्र का दिलीप। दोनों मित्र एम० ए० फाइनल में पढ़ रहे थे। नौ बजते-बजते दोनों मित्रों को लेकर फिटिन द्वार पर आ लगी। घर में जो दौड़-धूप थी वह और भी बढ़ गई। पिता को प्रणाम कर राजेन्द्र मित्र के साथ घर में आए। माता ने देखा तो दौड़कर ऐसे लपकी जैसे गाय बछड़े को देखकर लपकती है। अपने पुत्र को छाती से लगा, अश्रु-मोचन किया। मुख, सिर, पीठ पर हाथ फेरा, पत्र न भेजने के, अम्मा को भूल जाने के दो-चार उलाहने दिए। राजेन्द्र ने सबके बदले में हंसकर कहा—'देखो अम्मा, इस बार मैंने खूब दूध-मलाई खाई है, मैं कितना तगड़ा हो आया हूं। इस दिलीप को तो मैं यूं ही उठाकर फेंक सकता हूं।'

गृहिणी ने इतनी देर बाद पुत्र के मित्र को देखा। दिलीप ने प्रणाम किया, गृहिणी ने आशीर्वाद दिया। इसके बाद उन्होंने कहा—'बैठक में चलकर थोड़ा पानी पी लो, पीछे और बातें होंगी।'

राजेन्द्र ने पूछा—'वह लोमड़ी कहां है···रजनी ?' वह ठहाका मारकर हंस दिया—'आओ दिलीप, मैं तुम्हें लोमड़ी दिखाऊं।' कहकर उस ने मित्र का हाथ खींच लिया। दोनों ज़ीने पर चढ़ गए। गृहिणी रसोई में चली गईं।

राजेन्द्र ने रजनी की कोठरी के द्वार पर खड़े होकर देखा वह

मुंह फुलाए कुर्सी पर बैठी है। घर के आनन्द-कोलाहल से उसे जा विरक्ति हो रही थी वह अभी भी उसके मुख पर थी। अब एका-एक भाई और उसके मित्र को भीतर आते देखकर उठ खड़ी हुई। उसने मुस्कराकर भाई को प्रणाम किया।

राजेन्द्र ने आगे बढ़कर उसके दोनों कंधे झकझोर डाले, फिर दिलीप से कहा—'दिलीप, यही हमारी लोमड़ी है। इसके सब गुण तुमको अभी मालूम नहीं। सोने में कुम्भकरण, खाने में भीमसेन, लड़ने में सूर्पनखा और पढ़ने में बण्टाढार! पर न जाने कैसे बी० ए० में पहुंच गई। इस साल यह बी० ए० फाइनल में जा रही है। क्लास में सदा प्रथम होकर इनाम पाती रही है।'

दिलीप ने देखा एक चम्पकवर्णी सुकुमार किशोरी बालिका जिसका अल्हड़पन उसके अस्तव्यस्त बालों से स्पष्ट हो रहा है, राजेन्द्र ने कैसी कदर्प व्याख्या की है। भाई-बहिन का दुलार भी बड़ा दुर्गम है। वह शायद गाली-गुफता धौल-धप्पा से ही ठीक-ठीक अमल में लाया जा सकता है।

दिलीप आश्चर्यचकित होकर रजनी को देखकर मुस्करा रहा था। उसे कुछ भी बोलने की सुविधा न देकर राजेन्द्र ने रजनी की ओर देखकर कहा—'और यह महाशय, मेरे सहपाठी, कहना चाहिए मेरे शिष्य हैं। रसगुल्ला खिलाने और रसगुल्ले से भी मीठी गप्पें उड़ाने में एक हैं। जैसी तू पक्की लोमड़ी है, वैसे ही यह पक्के गधे हैं। मगर यूनिवर्सिटी की डिग्री तो लिए ही जाते हैं, खाने-पीने में पूरे राक्षस हैं। ज़रा बन्दोबस्त ठीक-ठीक रखना।'

राजेन्द्र ही-ही करके हंसने लगा। फिर उसने दिलीप के कंधे पर हाथ रखकर कहा—'दिलीप, रज्जी हम लोगों की बहिन है, ज्यादा शिष्टाचार की जरूरत नहीं, बैठो और बेतकल्लुफ 'तुम' कहकर बातचीत करो।'

जब तक राजेन्द्र कहता रहा, रजनी चुपचाप सिर नीचा किए

सुनती रही, एकाध बार वह मुस्कराई भी, पर एक अपरिचित युवक के सामने इतनी घनिष्ठता पसन्द नहीं आई।

दिलीप ने अब कहना शुरू किया—'रज्जी, तुम्हारा परिचय पाकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। राजेन्द्र ने बार-बार तुम्हारी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। अब मुझे यहां खींच भी लाए। बड़े हर्ष की बात है कि तुम अपने कालेज में प्रथम रहती रही हो, तुम नारी-रत्न हो, मैं तुम्हें देखकर बहुत प्रभावित हुआ हूं।'

रजनी ने उनका उत्तर न देकर केवल मुस्करा भर दिया, फिर उसने भैया से कहा—'जलपान नहीं हुआ न, यहीं ले आऊं?' वह जाने लगी तब दुलारी ने आकर कहा—'भैया जलपान बैठक में तैयार है।'

राजेन्द्र ने कहा—'यहीं ले आ। तुम ठहरो रजनी, दुलारी ले आएगी।'

तीनों के बैठ जाने पर राजेन्द्र ने कहा—'रजनी, तुम अभी तक अपने कमरे में क्या कर रही थीं?'

'मैं विद्रोह कर रही थी।' रजनी ने तिरछी नजर से भाई को घूरकर और होंठों पर वैसी ही मुस्कान भरकर कहा।

'वाह रे, विद्रोह, ज़रा सोच-समझकर कोई बात कहना, दिलीप के पिता सी० आई० डी० के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट हैं।

'मैं तो खुला विद्रोह करती हूं, षड्यन्त्र नहीं।'

'किसके विरुद्ध यह खुला विद्रोह है?'

'तुम्हारे विरुद्ध।'

'मेरे विरुद्ध? मैंने क्या किया है?'

'तुम पुरुष हो न?'

'इसमें मेरा क्या अपराध है? मुझे रजनी बनने में कोई उज्र नहीं, यदि तुम राजू बन सको।'

'मैं पुरुष नहीं बनना चाहती हूं, पुरुषों के विरुद्ध विद्रोह किया

चाहती हूं।'

'किसलिए ?'

'इसलिए कि पुरुष क्यों सब बातों में सर्वश्रेष्ठ बनते हैं, स्त्रियां क्यों उनसे हीन समझी जाती हैं।'

दिलीप अब तक चुप बैठा था, अब वह जोश में आकर हथेली पर मुक्का मारकर बोला—'ब्रेवो, रज्जी, मैं तुम्हारे साथ हूं।'

'मगर मैं तुम दोनों का मुकाबला करने को तैयार हूं। पुरुष श्रेष्ठ हैं और श्रेष्ठ रहेंगे।' राजेन्द्र ने पैंतरा बदलकर नकली क्रोध और गम्भीरता से कहा। फिर उसने ज़रा हंसकर कहा—'मगर यह विद्रोह उठा कैसे रजनी ?'

रजनी ने नथुने फुला और भौंहों में बल डालकर कहा—'कल से अम्मा ने और बाबूजी ने घर भर को सिर पर उठा रखा है। पचास तो पकवान बनाए हैं, रातभर खटखट रही। नौकर-चाकरों की नाक में दम। भैया आ रहे हैं, भैया आ रहे हैं। मैं भी तो आती हूं, तब तो कोई कुछ नहीं करता। तुम पुरुष लोगों की सब जगह प्रधानता है, सब जगह इज्जत है। मैं इसे सहन नहीं करूंगी।' रजनी ने खूब जोर और उबाल में आकर यह बात कही।

सब कैफियत सुनकर राजेन्द्र हंसते-हंसते लोटपोट हो गया। उसने कहा—'ठहर, मैं अभी तेरा विद्रोह दमन करता हूं।'

वह दौड़कर नीचे गया और क्षणभर ही में एक बड़ा-सा बंडल ला, उसे खोल उसमें से साड़ियां, कंघे, लेवेंडर, सेंट, क्रीम और न जाने क्या-क्या निकाल-निकालकर रजनी पर फेंकने लगा। यह सब देख रजनी खिलखिलाकर हंस पड़ी। विद्रोह दमन हो गया।

दुलारी जलपान ले आई। तीनों बैठकर खाने लगे। राजेन्द्र ने कहा—'कहो, विद्रोह कैसे मजे में दमन हुआ !'

'वह फिर भड़क उठेगा।'

'वह फिर दमन कर दिया जाएगा।'

'पर इस दमन में कितना गोला-बारूद खर्च होता है।'

'दमन करके शान भी कितनी बनती है।'

एक बार फिर तीनों प्राणी ठहाका मारकर हंस दिए। जल-पान समाप्त हो गया।

दिलीप बाबू और रजनी में बड़ी जल्दी पट गई। राजेन्द्र बाबू तो दिनभर गांव की जमींदारी की, खेतों की मटरगश्त लगाते और दिलीप महाशय लाइब्रेरी में आरामकुर्सी पर रजनी की प्रतीक्षा में पड़े रहते। अवकाश पाते ही रजनी वहां पहुंच जाती। उसके पहुंचते ही बड़े जोर-शोर से किसी सामाजिक विषय पर विवाद छिड़ जाता, पर सबसे प्रधान विषय होता था स्त्री-स्वतन्त्रता। इस विषय पर दिलीप महाशय रजनी का विरोध नहीं करते थे, प्रश्रय देते थे और यदि बीच में राजेन्द्र आ पड़ते तो उनसे जब रजनी का प्रबल वाग्युद्ध छिड़ता तो दिलीप सदैव रजनी को ही बढ़ावा देते रहते। तब क्या राजेन्द्र दकियानूसी विचारों के थे? नहीं वे तो केवल विवाद के लिए विवाद करते थे। भाई-बहिन में प्रगाढ़ प्रेम था। रजनी को राजेन्द्र प्राण से बढ़कर मानते। यह बात दिलीप के मन में घर कर गई। राजेन्द्र एक सच्चे उदार और पवित्र विचारों के युवक थे, और रजनी एक चरित्र-वती सतेज बालिका थी। शिक्षा से उसका हृदय उत्फुल्ल था, उसके उज्ज्वल मस्तक पर प्रतिभा का तेज था। वह जैसे भाई के सामने निस्संकोच भाव से आती, जाती, हंसती, रूठती, भागती, दौड़ती, बहस करती और बिगड़ती थी, उसी भांति दिलीप के सामने भी। वह यह बात भूल गई थी कि दिलीप कोई बाहर का आदमी है।

परन्तु दिलीप के रक्त की उष्णता बढ़ रही थी। उसकी आंखों में गुलाबी रंग आ रहा था। वह अधिक-से-अधिक रजनी

के निकट रहना, उसे देखना, और उसकी बातें सुनना चाहता था। उसका यह अनुराग और आसक्ति रजनी पर तुरन्त ही प्रकट हो गई। वह चौकन्नी हो गई। वह एक योद्धा प्रकृति की लड़की थी। ज्योंही उसे पता चला कि भैया के यह लम्पट मित्र प्रेम की लहर में आ गए हैं, उसने उन्हें ज़रा ठीक तौर पर पाठ पढ़ाने का निश्चय कर लिया। कालेज और बोर्डिंग में रहने वाले छात्रों की लोलुप और कामुक प्रवृत्ति का उसे काफी ज्ञान था। वह स्त्री जाति की रक्षा के प्रश्न पर विचार कर चुकी थी। वह इस निर्णय पर पहुंच चुकी थी कि स्त्रियों को अपने सम्मान की रक्षा के लिए मर्दों का आसरा नहीं तकना चाहिए। वह जब भाई से इस विषय पर जोर-शोर से विवाद करती थी, तब आवेश में उसका मुंह लाल हो जाता था। राजेन्द्र को तो उसे इस प्रकार उत्तेजित करने में आनन्द आता था, किन्तु दिलीप महाशय अकारण ही उसका समर्थन करते-करते कभी-कभी तो अपना व्यक्तित्व ही खो बैठते थे।

रजनी ने उन महाशय को प्रेम का खरा सबक सिखाने का पक्का इरादा कर लिया। ये स्कूल-कालेज के गुण्डे लड़कियों को मिठाई से ज्यादा कुछ समझते ही नहीं। देखते ही उनकी लार टपक पड़ती है, वे निर्लज्ज की भांति उनकी मिलनसारी, उदारता, और कोमलता से लाभ उठाते हैं। रजनी होंठ काटकर यह सोचने लगी कि आखिर ये पुरुष स्त्रियों के अपमान का साहस ही किसलिए करते हैं। स्त्रियों के सामने जमनास्टिक की कसरत-सी करना तो इन लफंगों का केवल नाटक है। रजनी देख चुकी थी कि उसे अपने कालेज जीवन में इन उद्दण्ड युवकों से कितना कष्ट भोगना पड़ा था। वे पीठ पीछे लड़कियों के विषय में कितनी मनमानी अपमानजनक बातें किया करते हैं। उनकी मनोवृत्तियां कितनी गन्दी होती हैं। उसने पहचान लिया कि भैया के मित्र भी उसी टाइप के

हैं और उनकी अच्छी तरह मरम्मत करके उनके इस टपकते हुए प्रेम को हवा कर देने की उसने प्रतिज्ञा कर ली। उसने अपनी सहायता के लिए घर की युवती दासी दुलारी को मिलाकर सब प्रोग्राम ठीक-ठाक कर लिया।

उस दिन राजेन्द्र पिता के साथ देहात में जमींदारी के कुछ जरूरी झंझट सुलझाने गए थे। घर में गृहिणी, नौकर-नौकरानी ही थीं। गृहिणी पुत्री को इतना स्वतन्त्र देखकर बड़बड़ाती तो थीं, पर कुछ रोक-टोक नहीं करती थीं। दिलीप के साथ रजनी निस्संकोच बातें करती है, बैठी रहती है, ताश खेलती है, चाय पीती है, इन सब बातों को उनका मन सहन कर गया था। वह साधारण पढ़ी-लिखी स्त्री थीं, पर पुत्री ने कालेज की शिक्षा पाई है, यह वह जानती थीं, डरती भी थीं। फिर रजनी सुनती किसकी थी!

दिलीप को राजेन्द्र ने साथ ले जाने की बहुत जिद की थी, पर वह बहाने बनाकर नहीं गया। जब वह बहाने बनाकर असमर्थता दिखा रहा था, तब रजनी उसकी ओर तिरछी दृष्टि करके मुस्करा रही थी। उसका कुछ दूसरा ही अर्थ समझकर दिलीप महाशय आनन्दविभोर हो रहे थे। प्रगल्भा रजनी अपनी इस विजय पर मन-ही-मन हंस रही थी।

दिनभर मिस्टर दिलीप ने बेचैनी में व्यतीत किया। उस दिन उसने अनेक पुस्तकों को उलट-पुलट डाला। मन में उद्वेग को शमन करने और संयत रखने के लिए उन्होंने बड़ा ही प्रयास किया। अन्ततः उन्होंने खूब सोच-समझकर रजनी को एक पत्र लिखा।

रजनी उस दिन दिल जलाने को दो-चार बार उनके कमरे में घूम गई। एकाध बार वचन बाण भी मारे, मुस्कराई भी। बिल्ली जिस प्रकार अपने शिकार को मारने से पहले खिलाती है उसी

भांति रजनी ने भी महाशय जी को खिलाना शुरू कर दिया।

दुलारी बड़ी मुंहफट और ढीठ औरत थी। रजनी का संकेत पाकर वह जब-तब चाहे जिस बहाने उनके कमरे में जा एकाध फुलझड़ी छोड़ आती। एक बार उसने कहा—'आज कोई और नहीं है इसलिए जीजी ने कहा है आपकी खातिरदारी का भार उन पर है। सो आप संकोच न करें। जिस चीज की आवश्यकता हो कहिए, मैं हाजिर करूं, जीजी का यही हुक्म है।'

मिस्टर दिलीप ने मुस्कराकर कहा—'तुम्हारी जीजी इस तुच्छ परदेशी का इतना ख्याल करती हैं, इसके लिए उन्हें धन्य-वाद देना।'

दुलारी ने हंसकर और साड़ी का छोर आगे बढ़ाकर कहा—'बाबूजी, हम गंवार दासी यह बात नहीं जानतीं, यह तो आप ही लोग जानें—कहिए तो मैं जीजी को बुला लाऊं, आप उन्हें जो कहना हो, कहिए।'

दिलीप हंस पड़ा। उसने कहा—'तुम बड़ी सुघड़ औरत हो।'

दुलारी ने साहस पाकर कहा—'बाबूजी, आप हमें अपने घर ले चलिए, बहूजी की खिदमत करके दिन काट दूंगी।'

दिलीप महाशय ने जोर से हंसकर कहा—'मगर बहू रानी भी तो हों, अभी तो हम ही अकेले हैं।' इस पर दुलारी ने कपार पर भौंहें चढ़ाकर कहा—'बाप रे, गजब है, आप बड़े लोगों की भी कैसी बुद्धि है। भैया क्वारे, जीजी क्वारी, आप भी क्वारे।'

भूमिका आगे नहीं चली। गृहिणी ने दुलारी को बुला लिया। रजनी ने सब सुना तो मुस्करा दिया।

दोपहर की डाक आई। दुलारी ने पूछा—'जीजी की कोई चिट्ठी है?' दिलीप ने साहसपूर्वक मासिक पत्रिकाओं तथा चिट्ठियों के साथ अपनी चिट्ठी भी मिलाकर भेज दी और अब वह धड़कते कलेजे से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

पत्र को पढ़कर रजनी पहले तो तनिक हंसी। फिर तुरन्त ही क्रोध से थर-थर कांपने लगी। पत्र में कवित्वपूर्ण भाषा में प्रेम के ज्वार का वर्णन किया गया था। एकाएक उनके मन में जो प्रेम रजनी के लिए उदय हुआ, वे रजनी के प्रति कितने आकृष्ट हुए यह सब उसमें लिखा था। वे रजनी के बिना जीवित नहीं रह सकेंगे। विरक्त हो जाएंगे या जहर खा लेंगे, यह भी लिखा था। अन्त में हाथ जोड़कर सब बातें गोपनीय रखने की प्रार्थना भी की थी।

पत्र पढ़ने पर रजनी के होंठ घृणा से सिकुड़ गए। वह सोचने लगी—यह पुरुष जाति जो अपने को स्त्रियों से जन्मत: श्रेष्ठ समझती है, कितनी पतित है। इन पढ़े-लिखे लोगों में भी आत्म-सम्मान नहीं। ये अपनी ही दृष्टि में गिरे हुए हैं। रजनी ने पत्र फेंक दिया। वह पलंग पर लेटकर चुपचाप बहुत-सी बातों पर विचार करने लगी।

संध्या होने पर दिलीप महाशय आसामी मूंगे का कुर्ता पहनकर घूमने को निकले। रजनी ने देखा उनका मुंह सूख रहा है, और आंखें ऊपर नहीं उठ रही हैं। वे अपराधी की भांति चुपचाप खिसक जाना चाह रहे हैं।

रजनी ने पुकारकर कहा—'कहां चले दिलीप बाबू, अभी तो बहुत धूप है। संध्या को ज़रा जल्दी लौटिएगा, हम लोग सिनेमा चलेंगे।'

रजनी की बात सुनकर ये रजनी के भाई के मित्र सभ्य महाशय ऐसे हरे हो गए, जैसे वर्षा के छींटे पड़ने से मुर्झाए हुए पौधे खिल जाते हैं। उन्होंने एक बांकी अदा से खड़े होकर ताकते हुए कुछ कहा। उसे रजनी ने सुना नहीं, वह अपना तीर फेंककर चली गई।

रजनी ने विषम साहस का काम किया। दिलीप महाशय झटपट ही लौट आए। आकर उन्होंने उत्साहपूर्ण वाणी में रजनी से कहा—'रजनी, मैं रिजर्व बॉक्स के दो टिकट खरीद लाया हूं।'

रजनी ने घृणा के भाव को दबाकर हंस दिया।

भोजन के बाद रजनी और दिलीप दोनों ही सिनेमा देखने चल दिए। गृहिणी ने कुछ भी विरोध न किया। सिनेमाघर निकट ही था, अतः पैदल ही रजनी चल दी। रास्ते में बातचीत कहीं नहीं हुई, मालूम होता था दोनों ही योद्धा अपने-अपने पैंतरे सोच रहे थे। रजनी इस उद्धत युवक को ठीक कर देना चाहती थी और दिलीप प्रेम के दलदल में बुरी तरह फंसा था। रातभर और दिनभर में जो-जो बातें उसने सोची थीं, वे अब याद नहीं आ रही थीं। कैसे कहां से शुरू किया जाए, यही प्रश्न सम्मुख था। पत्र पढ़कर भी रजनी बिगड़ी नहीं, भण्डाफोड़ भी नहीं किया, उल्टे अकेली सिनेमा देखने आई है। अब फिर सन्देह क्या और सोच क्या, अब तो सारा प्रेम उंड़ेल देना चाहिए। सुविधा यह थी कि रजनी अंग्रेजी पढ़ी स्त्री थी। शेक्सपियर, गेटे, टेनीसन और वायरन के भावपूर्ण सभी प्रेम-सन्दर्भों को समझ सकती थी पर कठिनाई तो यह थी कि शुरू कैसे और कहां से किया जाए।

रजनी ने कनखियों से देखा, दिलीप महाशय का मुंह सूख रहा है, पैर लड़खड़ा रहे हैं। रजनी ने मुस्कराकर कहा—'क्या आपको बुखार चढ़ रहा है, मिस्टर ? मिस्टर दलीप, आपके पैर डगमगा रहे हैं, मुंह सूख रहा है।'

दिलीप ने बड़ी कठिनता से हंसकर कहा—'नहीं नहीं, मैं तो बहुत अच्छा हूं।'

'अच्छी बात है।' कहकर रजनी ने लम्बे-लम्बे डग बढ़ाए।

बॉक्स में बैठकर भी कुछ देर दोनों चुप रहे। खेल शुरू हो गया था। शायद खेल कोई प्रसद्धि न था, इसलिए भीड़भाड़ बिल्कुल न

थी। बॉक्स और रिजर्व की तमाम सीटें खाली पड़ी थीं। अपने चारों ओर सन्नाटा देखकर पहले तो रजनी कुछ घबराई, परन्तु फिर साहस करके वह अपनी कुर्सी ज़रा आगे खींचकर बैठ गई। कौन खेल है—दोनों कुछ क्षण इसीमें डूबे रहे परन्तु थोड़ी ही देर में दोनों को अपना-अपना उद्देश्य याद आ गया। खेल से मन हटाकर दोनों दोनों को कनखियों से देखने लगे। एकाध बार तो नजर बचा गए, पर कब तक? अंत में एक बार रजनी खिल-खिलाकर हंस पड़ी। उसे हंसती देख दिलीप भी हंस पड़ा परन्तु उसकी हंसी में फीकापन था।

रजनी तुरन्त ही सम्भल गई। उसने कहा—'क्यों हंसे, मिस्टर?'

'और तुम क्यों हंसीं रजनी?'

दिलीप ने ज़रा साहस करके कुर्सी आगे खिसकाई। रजनी सम्हलकर बैठ गई। उसने स्थिर अकम्पित वाणी में कहा—'मैं तो यह सोचकर हंसी कि तुम मन में क्या सोच रहे हो, वह मैं जान गई।'

'सच, रजनी तो तुमने मुझे क्षमा कर दिया?' वह आवेश में आकर खड़े होकर रजनी कुर्सी पर झुका। उसे वहीं रोककर रजनी ने कहा—'क्षमा करने में तो कुछ हर्ज नहीं है दिलीप बाबू, मगर यह तो कहो कि क्या तुम उसी खत की बात सोच रहे हो? सच कहो, तुमने जो आज खत में लिखा है, क्या वह सच है?'

दिलीप घुटनों के बल धरती पर बैठ गया, जैसा कि बहुधा सिनेमा में देख चुके हैं। भावपूर्ण ढंग से दोनों हाथ पसारकर कहा—'सचमुच रज्जी, मैं तुम्हें प्राणों से भी बढ़कर प्यार करता हूं।'

'प्राणों से बढ़कर? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है दिलीप बाबू, इस पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता।'

'रजनी, विश्वास करो, तुम कहो तो मैं अभी यहां से कूदकर अपनी जान दे दूं।'

'इससे क्या फायदा होगा मिस्टर दिलीप, उल्टे पुलिस मुझे हत्या करने के जुर्म में गिरफ्तार कर लेगी। परन्तु मुझे तो यह ताज्जुब है कि तुम दो ही दिन में मुझे इतना प्रेम कैसे करने लगे।'

'मैं तो पहली नजर ही में तुम पर मर मिटा था।'

'तुमने क्या किसी और स्त्री को भी प्यार किया है?'

'नहीं नहीं, कभी नहीं, इस जीवन में सिर्फ तुम्हें।'

'क्यों, क्या तुम्हें कोई स्त्री मिली नहीं?'

'तुम सी एक भी नहीं, रज्जी।'

'यह तो और भी आश्चर्य की बात है। कलकत्ते में, बनारस में, इलाहाबाद में, लखनऊ में, पटने में, कहीं भी मुझ-सी कोई स्त्री है ही नहीं?"

'नहीं नहीं, रज्जी, तुम स्त्री-रत्न हो।'

'जापान में, चीन में, इंग्लैंड में, जर्मनी में, अमेरिका में, अरे! तुम तो सब देश की स्त्रियों से वाकिफ होगे?

'रज्जी, तुम सबमें अद्वितीय हो।'

'मुझे इसमें बहुत शक है मिस्टर दिलीप, एक काम करो। अभी यह प्रेम मुल्तबी रहे। तुम एक बार हिन्दुस्तान के सब शहरों में घूम-फिरकर ज़रा अच्छी तरह देख-भाल आओ। मेरा तो ख्याल है तुम्हें मुझसे अच्छी कई लड़कियां मिल जाएंगी।'

दिलीप महाशय ने ज़रा जोश में आकर कहा—'रज्जी, तुम्हारे सामने दुनिया की स्त्री मिट्टी है।'

'मगर यह तुम्हारा अपना वाक्य नहीं मालूम देता। यह तो पेटेण्ट वाक्य है। देखो, मैं ही तुम्हें दो-तीन लड़कियों के पते बताती हूं। एक तो इलाहाबाद के क्रास्थवेट में मेरी सहेली है। दूसरी...।'

दिलीप ने बात काटते हुए कहा—'प्यारी रज्जी, क्यों दिल को जलाती हो, इस दास पर रहम करो। मैं तुम्हारा बे दाम का चाकर हूं। अपने नाजुक और कोमल हाथों···।'

कहते-कहते उसने रजनी के हाथ पकड़ने को हाथ बढ़ाया। इसी बीच रजनी ने तड़ाक् से एक तमाचा जो महाशय के मुंह पर जड़ा तो उजाला हो गया, पैरों की जमीन निकल गई। वह मुंह बाए वैसे ही बैठे रह गया।

रजनी ने स्थिर गम्भीर स्वर में कहा—'मिस्टर दिलीप, मैं तुम्हारी गलती सुधारना शुरू करती हूं। देखो, अब तो तुम समझ गए कि ये हाथ उतने नाजुक और कोमल नहीं हैं, जितने तुम समझे बैठे हो। कहो, तुम्हारी आंख बची या फूटी? मैंने ज़रा बचाकर ही तमाचा जड़ा था। अब दूसरी गलती भी मैं सुधारती हूं। देखो, सामने वह जो यूरोपियन लड़की बैठी है—वह मुझसे हजार दर्जे अच्छी है या नहीं। तुम दुनिया की कहते हो, मैं तुम्हें यहीं दिखाए देती हूं. कहो, है या नहीं?'

मिस्टर दिलीप की सिट्टी गुम हो रही थी, वे चेष्टा करने पर भी नहीं बोल सके। रजनी ने धीमे किन्तु कठोर स्वर में कहा—'बोले रे, अधम, वंचक, लम्पट, पढ़े-लिखे गधे, मेरी बात का जवाब दे, वरना अभी चिल्लाकर सब आदमियों को मैं इकट्ठा करती हूं।'

दिलीप ने हाथ जोड़कर धीमे स्वर में कहा—'मुझे माफ कीजिए रजनी देवी, मुझे माफ कीजिए।'

रजनी ने घृणा से होंठ सिकोड़कर कहा—'अरे, तुम्हारा तो स्वर ही बदल गया, और टोन भी। अब तुम मुझे 'तुम' कहकर नहीं पुकारोगे। 'रज्जी, नहीं कहोगे। बदमाश, तुम मित्र की बहिन की प्रतिष्ठा नहीं रख सके! तुम जैसे जानवर किसी भले घर में जाने योग्य, किसी बहू-बेटी से खुलकर मिलने योग्य हो

सकते हैं ?' रजनी ने यह कहकर दिलीप के दोनों कान पकड़कर खींच लिए और तड़ातड़ पांच-सात तमाचे उसके मुंह पर रसीद करके कहा—'कहो, प्रेम अब कहां है ? मुझ-सी लड़की कहीं दुनिया में है या नहीं ?'

'रजनी देवी, मैं आपकी शरण हूं।'

'अच्छा, अच्छा ! मगर तुम तो शायद मेरे बिना जी भी नहीं सकोगे ! जाओ, कुएं-नदी में डूब मरो। क्या तुम भैया को मुंह दिखा सकोगे ?'

दिलीप चुपचाप धरती पर बैठा रहा।

रजनी ने लात मारकर कहा—'बोल रे बदमाश, बोल !'

दिलीप ने गिड़गिड़ाकर कहा—'धीरे, रजनी देवी, लोग सुन लेंगे तो यहां भीड़ हो जाएगी।'

रजनी ने कहना शुरू किया—'कुछ परवाह नहीं। हां, तुम क्या चाहते हो कि स्त्रियों को तुम इसी प्रकार फुसलाओ ? वे या तो पर्दे में घुग्घू बनी बैठी रहें और यदि स्वाधीन वायु में जीना चाहें तो तुम्हारे जैसे सांपों से वे डसी जाएं ? क्यों ? भैया के साथ विवाद में तुम सदा मेरा पक्ष लेते थे सो इसीलिए ? कहो ? तुम समझते हो भैया उदार हैं, नहीं जानते उन्होंने मेरा, मेरी आत्मा का निर्माण किया है। यह उन्हीं का साहस था कि तुम्हें अकपट भाव से उसी भांति मेरे सम्मुख उपस्थित किया जिस भांति वे स्वयं मेरे सम्मुख आते हैं। पर तुम, नीच, लम्पट, दो दिन में ही बहिन के समान अपने मित्र की बहिन से प्रेम करने लगे ! कहो, तुम्हारे घर कोई बहिन है या नहीं ? इसी भांति तुम उसे पृथ्वी की अद्वितीय स्त्री कहते हो ?'

दिलीप महाशय के शरीर में रक्त की गति रुक रही थी, बोल नहीं निकलता था। उन्होंने रजनी के पैर छूकर कहा—'आह, चुप रहो, कोई सुन लेगा।'

'अरे जब तक तुम जैसे अपवित्र लुच्चे युवक हैं स्त्रियां कभी निर्भय नहीं हो सकतीं। कहो—क्या हमें संसार में हंसने-बोलने, घूमने-फिरने, आमोद-प्रमोद करने की जगह ही नहीं, हम चोर की भांति लुक-छिपकर, पापी की भांति मुंह ढंककर दुनिया में जिएं। और यदि ज़रा भी आगे बढ़ें तो तुम जैसे लफंगे उसका गलत अर्थ लगाकर अपनी वासनाएं प्रकट करें ? याद रक्खो, स्त्रियों को निर्भय रहने के लिए तुम जैसे खतरनाक नर-पशुओं का न रहना ही अच्छा है। जानते हो—जब मनुष्यों ने वनों को साफ करके सभ्यता विस्तारित की थी, तब वनचर खूंखार पशुओं का सर्वनाश कर दिया था—उनके रहते वे निर्भय नहीं रह सकते थे। समूची सभ्यता वह है जहां स्त्रियां निर्भय हैं—वनचर खूंखार जानवरों के रहते मनुष्य निर्भय नहीं रह सकते थे और नगरचर गुण्डों के रहते स्त्रियां निर्भय नहीं रह सकतीं। इसलिए मैं तुम्हारे साथ वही सलूक किया चाहती हूं, जो मनुष्य ने वनचर पशुओं के साथ किया था।'

इतना कहकर रजनी ने एकाएक बड़ा-सा छुरा निकाल लिया।

छुरे को देखते ही दिलीप की घिग्घी बंध गई। वह न चिल्ला सकता था, न भाग सकता था, उसकी शक्ति तो जैसे मर गई थी। उसने रजनी के पैरों में सिर डालकर मुर्दे के से स्वर में कहा—'क्षमा कीजिए देवी, आप इस बार इस पशु को क्षमा कीजिए।'

रजनी ने धीमे गम्भीर स्वर में कहा—'क्षमा मैं तुम्हें कर सकती हूं। परन्तु तुम एक खतरनाक जानवर हो, जिन्दा रहोगे तो जाने कितनी बहिनों को खतरे में डालोगे।'

'मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं जीवन में प्रत्येक स्त्री को बहिन के समान समझूंगा।'

'तुम्हारी प्रतिज्ञा पर मुझे विश्वास नहीं।'

'मैं कसम खाता हूं।'

'किसकी ?'

'आपके चरणों की।'

'धुत् खबरदार ! इतना साहस न करना।'

'परमेश्वर की।'

'नास्तिक ! तुम्हारे परमेश्वर का भरोसा !'

'अपनी माता की, पिता की।'

'नहीं, मैं नहीं विश्वास करती कि तुम माता-पिता की इज्जत करते होगे।'

'आह देवी, इतना पतित न समझो।'

'तुम बड़े पतित हो।'

'तब जिसकी कहो उसकी कसम खाऊं।'

'अपने प्राणों की कसम खाओ।'

'मैं अपने प्राणों की कसम खाता हूं कि भविष्य में मैं बहिनों के प्रति कभी अपवित्र भाव नहीं आने दूंगा।'

'अच्छी बात है। फिलहाल मैं तुम्हें क्षमा करती हूं, कुर्सी पर बैठ जाओ।' रजनी ने कठिनाई से अपने होंठों की कोर में उमड़ती हंसी को रोका।

जान बची, लाखों पाए, दिलीप महाशय कुर्सी पर धम से बैठ गए। खेल चल रहा था, बाजे बज रहे थे, कोई गाना हो रहा था, पर्दे पर धमा-चौकड़ी हो रही थी, इस धूम-धाम ने और पीछे की सीट के सन्नाटे ने इस 'रजनी काण्ड' को ओर किसीका ध्यान आकृष्ट नहीं होने दिया। थोड़ी देर में इन्टरवैल हो गया, बत्तियां जल गईं। प्रकाश हो गया।

रजनी ने कहा—'मैं घर जाना चाहती हूं दिलीप बाबू, आप चाहें तो यहीं ठहर सकते हैं।'

दिलीप ने आज्ञाकारी नौकर की भांति खड़े होकर कहा—

'चलिए फिर।'

रजनी चुपचाप चल दी।

दूसरे दिन तमाम दिन मिस्टर दिलीप कमरे से बाहर नहीं निकले, सिरदर्द का बहाना करके पड़े रहे। भोजन भी नहीं किया। अभी उन्हें यह भय बना हुआ था कि उस बाघिनी ने यदि राजेन्द्र से कह दिया तो गजब हो जाएगा।

संध्या समय रजनी ने उनके कमरे में जाकर देखा कि वे सिर से पैर तक चादर लपेटे पड़े हैं। रजनी ने सामने की खिड़की खोल दी और एक कुर्सी खींच ली। उस पर बैठते हुए उसने कहा—'उठिए मिस्टर दिलीप, दिन कब का निकल चुका है और अब छिप रहा है।'

दिलीप ने सिर निकाला। उनकी आंखें लाल हो रही थीं, मालूम होता था खूब रोए हैं। उन्होंने भर्राए हुए गले से कहा—'मैं आपको मुंह नहीं दिखा सकता, मैं अपनी प्रतिष्ठा की चर्चा करने का साहस नहीं कर सकता, पर आप अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वचन दीजिए कि आप घर में किसीसे भी यह बात नहीं कहेंगी।'

'मैं तो तुम्हें क्षमा कर चुकी, दिलीप।'

'यह कहिए, किसीसे भी नहीं कहेंगी।'

'अच्छा नहीं कहूंगी, उठो।'

'किसीसे भी नहीं?'

'किसीसे भी नहीं।'

'भैया से भी नहीं?'

'अच्छा, अच्छा, भैया से भी नहीं।'

'और उस दुष्टा दुलारी से भी नहीं?'

रजनी हंस पड़ी, बोली—'अच्छा, उससे भी नहीं।'

'वह जब मुझे देखती है मुंह फेरकर हंस देती है।'

'वह शायद समझती है, तुम जैसा पुरुष पृथ्वी पर और नहीं है।'

'अब जब आप क्षमा कर चुकीं, फिर ऐसी बात क्यों कहती हैं?'

रजनी हंसकर चल दी।

दूसरे दिन राजेन्द्र ने आने पर देखा कि दिलीप अपना बोरिया-बसना बांधे जाने को तैयार बैठे हैं। मुंह उतरा हुआ है और वे बुरी तरह घबराए हुए हैं। राजेन्द्र ने हंसकर कहा—'मामला क्या है? बुरी तरह परेशान हो रहे हो।'

'तार आया है···माताजी सख्त बीमार हैं। जाना पड़ रहा है।'

'देखें, कैसा तार है? अभी तो दो-चार दिन भी नहीं हुए।'

दिलीप तार के लिए टाल-टूल करके घड़ी देखने लगे। बोले—'अभी चालीस मिनट हैं, गाड़ी मिल जाएगी।'

दिलीप के जाने की एकाएक तैयारी देखकर राजेन्द्र परेशान-से हो गए। उन्हें दिलीप की टाल-टूल से सन्देह हुआ कि शायद घर में कोई अप्रिय [illegible] ई है।

उन्होंने रजनी को बुलाकर पूछा—'रजनी, दिलीप जा रहे हैं, मामला क्या है?'

रजनी ने आकर सिर से पैर तक दिलीप को देखकर कहा—'कह नहीं सकती, दुलारी को बुलाती हूं, उसे शायद कुछ पता हो।'

दिलीप ने नेत्रों में भिक्षा-याचना भरकर रजनी की ओर देखा। उसे देखकर रजनी का दिल पसीज गया। उसने आगे बढ़कर कहा—'क्यों जाते हो दिलीप बाबू।'

दिलीप की आंखें भर आईं। उसने झुककर रजनी के पैर छुए और कहा—'जीजी, सम्भव हुआ तो मैं फिर जल्दी ही

आऊंगा।' उन्होंने घड़ी निकाली और राजेन्द्र से कहा—'ज़रा एक तांगा तो मंगा दो।'

राजेन्द्र ने कहा—'तब जाओगे ही।' वे तांगे के लिए कहने बाहर चले गए। रजनी कुछ क्षण चुप खड़ी रही, फिर उसने कहा—'दिलीप बाबू, कहिए मुझ-सी कोई स्त्री दुनिया में है या नहीं ?'

दिलीप ने एक बार सिर से पैर तक रजनी को देखा, फिर कहा—'अब तुम चाहे मुझे मार ही डालो, पर रजनी तुम-सी औरत दुनिया में न होगी।'

इस बार से 'तुम' और 'रजनी' का घनिष्ट सम्बोधन पाकर रजनी की आंखों से टप टप दो बूंद आंसू गिर गए। वह जल्दी से वहां से घर के भीतर चली गई।

तांगा आ गया। सामान रख दिया। गृहिणी के पैर छूकर ज्यों ही दिलीप बाबू ड्योढ़ी पर पहुंचे तो देखते क्या हैं कि रजनी टीके का सामान थाल में धरे रास्ता रोके खड़ी है। दिलीप और राजेन्द्र रुककर रजनी की ओर देखने लगे। रजनी के पास ही दुलरिया भी अपनी गहरी लाल रंग की संतरी साड़ी पहने खड़ी थी। उसके हाथ में थाल देकर रजनी ने दिलीप के माथे पर रोली-दही का टीका लगाया, चावल सिर पर बखेरे और दो-तीन दाने चने चबाने को दिए। इसके बाद उसने मुट्ठीभर बताशे दिलीप के मुख में भर दिए और वह खिलखिलाकर हंस पड़ी।

दिलीप हंस न सका। उसने उमड़ते हुए आंसुओं के वेग को रोककर फिर झुककर रजनी के पैर छुए। इसके बाद मनीबैग निकालकर थाल में डाल दिया।

राजेन्द्र ने कहा—'अरे दिलीप, तुम रजनी की इस ठग-विद्या में आ गए। मुझे भी यह इसी तरह ठगा करती है।'

दिलीप ने कहा—'बकवास मत करो। चुपचाप टिकट और

तांगे के पैसे निकालो।'

इसी बीच दुलरिया ने जल से भरा लोटा और आगे बढ़ाकर कहा—'भैया, सवा रुपया इसमें भी तो डालो।'

क्षणभर के लिए दिलीप सकपका गए। उसने अपनी अंगूठी उतार कर जलपात्र में डाल दी। दुलरिया ने मृदु-मन्द मुस्कान होंठों पर बखेरकर कहा—'हमको ले चलो भैया, दुलहिन की सेवा करेंगी।'

दिलीप कुछ जवाब न देकर झपटकर भागा और राजेन्द्र का हाथ पकड़कर तांगे में जा बैठा।

दुलारी ने एक बार हंसती आंखों से रजनी को देखा, वह रो रही थी।

पाप

दो स्त्रियां परस्पर बातें कर रही थीं। संध्या हो रही थी। अन्धकार कमरे में बढ़ रहा था, पर वे अपनी बातचीत में इतनी लीन थीं कि उन्होंने इसकी तनिक भी परवाह न की। एक की अवस्था छबीस वर्ष के लगभग थी और दूसरी की पन्द्रह वर्ष की। दोनों सम्भ्रान्त कुल की शिक्षित महिलाएं थीं। कमरा खूब सजा हुआ था, और ये दोनों सुन्दरियां एक तख्त पर, मसनद के सहारे अस्त-व्यस्त पड़ी अपनी बातों में दीन-दुनिया भुलाए बैठी थीं। बड़ी स्त्री अत्यन्त सुन्दर थी। उसकी खिली हुई आंखें और उभरे हुए होंठ प्रबल लालसा के द्योतक थे। खूब गहरे और खूब काले बालों से उत्कट वासना प्रकट हो रही थी। वह खूब मजबूत, मांसल और मुस्तैद औरत थी। दूसरी स्त्री अत्यन्त नाजुक बदन, अविकसित कली के समान अस्फुट, पीली, दुबली, पतली, किन्तु सुन्दरी थी। उसकी नासिका का मध्य भाग कुछ उभरा हुआ था, और आंखें कटाक्षयुक्त थीं। छिपी हुई वासना और चांचल्य उसमें फूटा पड़ता था। अभी कुछ मास में उसका विवाह होने वाला था। पति-सहवास की स्मृति की एकमात्र झलक ने उसे असंयत कर दिया था। अब स्त्री के लिए पति क्या वस्तु है, पति नहीं—पुरुष क्या वस्तु है? यही उसके विचार और कल्पना का विषय था। इस समय दोनों स्त्रियां बिल्कुल सटकर बैठी इसी विषय का चिन्तन कर रही थीं।

छोटी स्त्री ने कहा—'अब मैं तुम्हें चाची कहूं, या बहनजी, या क्या? कुछ समझ में नहीं आता।'

'जी चाहे सो कहा कर।'

'अब ऐसी-ऐसी बातें करती हो, तो चाची कैसे हुईं ?'

'न सही, बहनजी सही।'

'अच्छी बात है, अब मैं बहनजी कहा करूंगी, पर बाबू साहब को क्या कहना होगा।'

'जीजाजी। अब तो वह तेरे जी जा जी हो गए।'

'नहीं नहीं, ऐसा नहीं, जीजाजी बहुत बुरे हुआ करते हैं।'

'बुरे क्या हुआ करते हैं ?'

'सब भांति की हंसी-दिल्लगी करते हैं। मैं उनसे हंसी-दिल्लगी करती क्या सजूंगी, बोलूंगी ही कैसे ?'

'क्या वह कोई बाघ हैं ? जीजाजी की मरम्मत तो सालियां ही किया करती हैं।'

'ना भई, मुझसे ऐसा न होगा, उनके सामने से मैं भाग जाऊंगी।'

'भाग कैसे जाएगी। साली बनना क्या हंसी-खेल है, इस बार होली खेलना होगा।'

'वाह, यह भी कहीं हो सकता है।' बालिका कुछ हंसकर गर्दन टेढ़ी करके बोली और दूसरी स्त्री की गोदी में सिर छिपा लिया।

'नहीं कैसे हो सकता, होली तो खेलना ही होगा।'

बाहर पद-ध्वनि सुनकर दोनों चौंकीं। बालिका ने कहा—'लो जीजाजी आ रहे हैं, अब मैं जाती हूं।'

'वाह, जाएगी कैसे ? आज उनसे बातें करनी पड़ेंगी।'

'नही, नहीं, मैं जाती हूं।' बालिका उठकर भागने लगी। दूसरी स्त्री ने उसे कसकर खींच लिया और कहा—'जाएगी कहां ? जीजाजी से बातें करनी होंगी।'

कमरे में स्त्री के पास किसी और को बैठा देख राजेश्वर बाहर ही ठिठक गए, वह दूसरे कमरे में जाने लगे। पत्नी ने पुकारकर

कहा—'चले आइए, यहां आपकी नई साली साहिबा हैं, और कोई नहीं।'

राजेश्वर ज़रा झिझकते हुए भीतर गए। बालिका सिकुड़कर गृहिणी की पीठ-पीछे छिप रही।

गृहिणी ने हंसकर कहा—'जीजाजी को प्रणाम भी नहीं!'

बालिका ने चुपके से हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

राजेश्वर ने कहा—'कौन है?'

'आप नहीं जानते, पड़ोस के प्रोफेसर साहब की कन्या किशोरी है, हम लोगों ने बहनापा जोड़ा है, अब यह आपकी साली और आप इसके जीजाजी हुए।'

राजेश्वर ज़रा मुस्कराए, फिर कहा—'इन्हें कुछ खिलाया-पिलाया भी है या नहीं, फल-मिठाई और लो।'

इतना कहकर राजेश्वर कमरे से बाहर निकल गए। उन्हें एक जरूरी मुकद्दमे की मिसल देखनी थी। मुवक्किल बैठक में बैठे थे। उन्होंने बालिका को देखा भी नहीं, उनके मन में कोई भाव भी उदय नहीं हुआ।

उनके जाने पर बालिका ने कहा—'बहनजी, ये तो बहुत मीठा बोलते हैं।'

'क्या रीझ गई?'

'हटो, ऐसो बातें न करो, मेरे यहां रहने से बाहर चले गए। मुझे जाने क्यों नहीं दिया, वे यहां बैठते।'

'तेरे सामने बैठने में क्या उन्हें डर लगता था?'

'मेरी वजह से तो चले ही गए।'

'चले जाने दे, जा कहां सकते हैं, नकेल नथी हुई है। बावी, वे एक क्षण तो मेरे बिना रह नहीं सकते।'

यह कहते हुए युवती के नथने फूल गए, आंखों में मद छा गया। बालिका ने सखी की ओर देखकर कहा—'सच कहना बहन, क्या

वे तुम्हें इतना प्यार करते हैं।

'तू प्यार को क्या जाने पगली, अभी तो अल्हड़ बछुड़ी है, ससुराल का रस तूने देखा नहीं है।'

'अच्छा, सच कहो, ये तुम्हें कितना प्यार करते हैं ?'

'जितना जगत् में किसीने किसीको नहीं किया।'

'और तुम ?' तुम भी प्यार करती हो या नहीं ?'

'मैं क्यों करने लगी।' युवती ने दो धप्प बालिका को लगा दीं। इसके बाद कहा—'अच्छा कह, कैसे हैं ?'

'बहुत अच्छे हैं।'

'तुझे पसन्द आए ?'

'हटो, कैसी बातें करती हो।'

'कह-कह, नहीं घूंसे मार-मारकर ढेर कर दूंगी।'

बालिका ने स्वीकार-सूचक सिर हिलाकर मुंह सखी के आंचल में छिपा लिया। युवती गर्व से फूल गई। उसने दो-चार घूंसे जमाकर कहा—'कहीं, आगे-पीछे बातें न करने लगना।'

'वाह, मैं बातें कैसे करूंगी ? हां, सुनो, उन्हें नाश्ता तो करा दो। बेचारे हारे-थके कचहरी से आए हैं !'

गृहिणी ने तीन तश्तरियों में नाश्ता सजाकर कहा—'लो, पहले उन्हें तुम्हीं दे आओ।'

बालिका ने कान पर हाथ धरकर कहा—'राम राम, मर जाऊं तब भी उनके सामने नहीं जाऊंगी।'

'तब साली क्या खाक बनीं ?'

'ऐसी साली नहीं बनती।'

'बस, इतने ही वह अच्छे लगे ?'

'पर उनके सामने कैसे जा सकती हूं ?'

'क्या वह तुझे हलवा समझकर गड़प कर जाएंगे ?'

'नहीं, मैं नहीं जाऊंगी।'

'तुझे ही आज भेजूंगी।'

'बहन जी, हाथ जोड़ती हूं।'

'हाथ जोड़ चाहे पांव।'

'नहीं जीजी, नहीं।'

'तब मैं नाराज हो गई, ले।'

'बहनजी माफ करो, मुझे न भेजो।'

'बस, मैं बोलती नहीं।'

'अजी, वहां और भी आदमी हैं।'

'तुम क्या बहू हो? बेटी हो, परदा क्या है।'

'तब तुम भी चलो।'

'मैं आदमियों में कहां जाऊं?'

'चिक के पास खड़ी रहना।'

'अच्छा, चल।'

दोनों स्त्रियां चलीं। बालिका के हाथ में नाश्ते की तश्तरी और पानी का गिलास था। द्वार पर जाकर गृहिणी ने उसे धकेल दिया। बालिका आंखें बन्द कर, गिलास और तश्तरी टेबल पर रख, सिर पर पैर रखकर भागी, तो अपने घर पर ही आकर दम लिया। गृहिणी कमरे में आकर पलंग पर लोट-पोट होकर हंसने लगी।

'जैसे बिजली कौंधा मार गई हो। राजेश्वर भौंचक-से रह गए। वह एक क्षण भी उस ज्वलंत चांचल्य को आंख भरकर न देख सके। मानो उनके शरीर का सारा रक्त दिमाग में इकट्ठा हो गया हो, और नसों में पारा भर गया हो। परन्तु वह शीघ्र ही संयत हो गए। वह चुपचाप अपने कागजात देखते रहे, पर उनका कलेजा धड़क रहा था। वह रह-रह कर सोच रहे थे, अजब लड़की

रही यह। कैसे वह एकाएक आई, और भाग गई। क्या यह सब कुमुद की कारस्तानी नहीं थी? पर कैसी भद्दी, कैसी वाहियात बात है। ये लोग भी क्या कहेंगे। यह सोचते-सोचते उन्होंने आंख उठाकर दबी नजर से अपने मुवक्किलों को देखा, और फिर उनकी दृष्टि नाश्ते की तश्तरी पर जाकर अटक गई।

एक मुवक्किल ने कहा—'वकील साहब, आप पहले नाश्ता कर लीजिए, यह काम तो होता ही रहेगा।'

वकील साहब अब भी आपे से बाहर थे। उनके मन में एक द्वन्द्व मच रहा था। वह अकारण ही हंस पड़े, पीछे अपनी हंसी से स्वयं चौंक भी पड़े। उन्होंने नाश्ते की तश्तरी की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—'आप लोगों के लिए भी कुछ मंगवाया जाए?'

'जी नहीं, आपकी कृपा है।'

वकील साहब नाश्ता कर फिर कागज देखने-भालने लगे। पर उनका मन काम में लगा नहीं। वह मुवक्किलों को बिदा कर भीतर आए। देखा, कुमुद की आंखें चुपचाप हंस रहीं और होंठ रह-रहकर फड़क रहे हैं।

उन्हें देखते ही कुमुद खिलखिलाकर हंस पड़ी। राजेश्वर ने कहा—'यह क्या बेवकूफी की?'

'कहिए, नाश्ते में स्वाद आया?'

'उसे वहां भेजा क्यों?'

'क्या वह अच्छी नहीं लगी?'

'पर वहां भेजना सरासर बेवकूफी थी।'

'पर थी मजेदार।' कुमुद फिर हंस दी।

वकील साहब कुर्सी पर बैठकर बोले—'यह ठीक नहीं किया, वहां बहुत लोग थे।'

'वे क्या उसके ससुर थे?

'हंसी की भी एक हद होती है, मर्यादा से बाहर जाना ठीक नहीं।'

'मर्यादा के बाहर क्या हुआ?'

'गैर लड़की को अकेला मर्दों में भेजना ठीक नहीं।'

'पर वह तो आपकी साली साहिबा है, गैर नहीं।'

'मुझे सालियों की जरूरत नहीं।'

'आपकी जरूरत को कौन पूछता है?'

'आइन्दा फिर ऐसा कभी न करना।'

'देखा जाएगा।'

'अभी तुम्हारा अल्हड़पन नहीं गया।'

'जी नहीं, मुझे वकीलों की तरह लम्बा मुंह बनाकर कानूनी बहस नहीं करनी पड़ती।'

'मैं तुमसे बहस नहीं करता, उस आफत को अब कभी घर न बुलाना, न उसकी चर्चा करना।'

'वह मारा! आफत, आफत, मन की बात तो मुंह से निकल गई। मालूम होता है, मन को भा गई।' वह हंसते-हंसते लोट गई। रावेश्वर झुंझलाकर घर से बाहर निकल गए।

वह सीधे क्लब गए। वहां जी न लगा, तो घूमने दूर तक निकल गए। वहां भी मन न लगा, तो एक दोस्त के घर जाकर शतरंज खेलने लगे। पर कहीं भी उनका मन नहीं लगा। वह अन्यमनस्क से घर लौटे, चुपके से खाना खाया, और अखबार ले बैठे। उनके मन में वही आफत रम रही थी। वह बिजली की तरह प्रकाश-पुंज को लपेटे कमरे में घुसना और तूफान की तरह निकल भागना, आंधी की भांति सब कुछ बखेर जाना, ये ही सब बातें उनके दिमाग में हलचल मचा रही थीं। वह इस बात पर

हैरान थे कि कुमुद ने भोजन के समय न उसकी चर्चा की, न हंसी। उन्हें बहुत आशा थी कि उसकी बात सुनेंगे। वह, अखबार लिए आरामकुर्सी पर देर तक पड़े-पड़े ऊंघने लगे। झपकी लगते ही देखा, वही आफत उसी भांति झपटकर उनके सामने आ खड़ी हुई। वह हड़बड़ाकर उठ बैठे, मानो उसे पकड़ लेंगे। पर खड़े होकर, आंख खोलकर देखा, कुमुद दूध का गिलास लिए खड़ी थी। वह खूब गम्भीर बनी खड़ी थी। उसे सामने देख राजेश्वर अपनी बेवकूफी पर झेंप गए। वह चुपचाप कुर्सी पर बैठ गए। फिर बेवकूफ की भांति हंसकर बोले--'मुझे नींद आ गई ?'

'जी हां, उसीमें कुछ सपना देखकर शायद हड़बड़ाकर उठ पड़े, पर सामने कोई और ही खड़ा मिला। लीजिए, दूध पी लीजिए, और फिर आराम से रातभर सपने देखिए।' कुमुद ने अब भी अपनी गम्भीरता भंग न की।

राजेश्वर सोच ही न सके, क्या जवाब दें। वह चुपचाप दूध पीने लगे। कुमुद उन्हें एक पान देकर चली गई, तो राजेश्वर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—'भागती कहां हो, अपनी उस नई सखी का सब हाल सुनाओ।'

'जी, उसकी बात न कीजिए।'

'नहीं नहीं, बताओ तो, तुमने क्या समझकर उसे वहां भेजा था ?'

'जी नहीं श्रीमान् जी, उसकी बात करने का मुझे हुक्म नहीं है।'

राजेश्वर ने कुमुद को खींचकर कुर्सी पर गिरा दिया, और दोनों हाथों से गला दबाकर कहा—'बोलो, नहीं तो गला घोंट दूंगा।'

'घोंट दीजिए श्रीमान् जी, पर एक सांस ले लेने दें।'

'अच्छा, लो एक सांस।'

कुमुद झटका देकर उठी, और राजेश्वर को गिराती तथा कुर्सी में अटकी अपनी साड़ी फाड़ती और हंसती हुई वहां से भाग गई।

राजेश्वर बक-झक करते ही रह गए।

वकील साहब की उम्र चालीस को पार कर गई थी। वह बहुत गम्भीर और उदासीन प्रकृति के आदमी थे। अपने मुवक्किलों में रूखे और खरे तथा अदालत में तीखे आदमी प्रसिद्ध थे। बहुत कम उन्हें हंसी-दिल्लगी करते देखा गया था। उनके यार-दोस्त भी कम थे। रसिकता नाम की कोई वस्तु उनमें थी ही नहीं। परन्तु किशोरी जैसे उनकी आंखों मे तप्त सलाई की भांति घुस गई हो। उनका मन न कचहरी में लगता था, न मुवक्किलों में। वह कुमुद से उसकी चर्चा करते भय खाते थे। पर घर में आते ही चारों ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखते कि क्या किशोरी कहीं दीवार के कोने में छिपी तो नहीं है। वह बड़ी सावधानी से घर में घुसते। वहां कुमुद किशोरी की कुछ चर्चा करती है या नहीं इस बात की वह बराबर टोह रखते। कुमुद उनकी सदैव ही, प्रतीक्षा करती मिलती। वह मानो मन-ही-मन पति की इस भावना को समझ गई थी, इसीलिए उन्हें देखते ही उसकी सदा की हंसती हुई आंखें और भी उत्फुल हो जाती थीं।

दोपहर का समय था। कचहरी की छुट्टी थी। वकील साहब भोजन कर चुपचाप पलंग पर पड़े पान कचर रहे थे। कुमुद नीचे कालीन पर बैठी छालियां काट रही थी। पति-पत्नी दोनों के मन में एक ही बात थी, परन्तु दोनों ही वह बात कह नहीं सकते थे। कुमुद यह कठिनाई देख मुस्करा रही थी। वकील साहब झेंपकर छिपी नजरों से कुमुद को देख रहे थे।

उन्होंने साहस करके कहा—'हंस क्यों रही हो ?'

'रोऊं क्या ?'

'कुछ सोच रही हो, भला क्या बात तुम्हारे मन में है ?'

'तुम्हीं बताओ, तुम तो अन्तर्यामी हो।'

'हूं तो, पर बताऊंगा नहीं।'

'जाने दो।' कुमुद फिर छालियां काटने में जुट गई। इस बार उसकी हंसी रुक न सकी। वह मुंह फेरकर हंसने लगी।

'तुम मुझे बेवकूफ समझती हो, क्यों ?'

'बेशक, इसमें आपको कुछ आपत्ति है ?'

'मैं बेवकूफ क्यों हूं ?'

'यों कि बिना बात राड़ बढ़ाते हो, सो नहीं जाते।'

'तब मैं सोता हूं।' कहकर राजेश्वर करवट बदलकर सो गए।

कुमुद ने और बातें नहीं कीं, वह वहीं बैठी सरौता चलाती तथा धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाती रही। कुमुद से कुछ सुनने की आशा करते-करते राजेश्वर सो गए।

आंख खुलने पर उन्होंने सुना, कुछ लोग उनके पलंग के पास बैठकर धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। क्षणभर बाद उन्होंने देखा कुमुद और किशोरी हैं। राजेश्वर को जागता देख वह सिकुड़कर उठ भागने की तैयारी करने लगी। कुमुद ने एक बार पति की ओर वक्र दृष्टि से देखा, ज़रा मुस्कराई, और किशोरी का हाथ पकड़कर गिरा दिया।

राजेश्वर ने रसिक की भांति कहा—'यह हाथापाई क्या हो रही है ?'

'क्यों ? आपको जामिन किसने बनाया ? मेरा घर है, मैं जो चाहूंगी, करूंगी।'

'कभी नहीं, अपना घर होने से ही क्या हुआ, किसी पर

अत्याचार न कर पाओगी, यह अंग्रेजी राज्य है, समझीं ?'

'समझी, और आप हैं एक नामी-गिरामी वकील, परन्तु यहां कच्चे मुवक्किल नहीं। वकालत रहने दीजिए, धेला भी नहीं मिलेगा।'

राजेश्वर उठकर हंसते हुए बैठ गए। किशोरी ने लजाते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम किया। राजेश्वर ने उसे आंख भरकर देखना चाहा, पर न देख सके। वह दूसरी ओर मुंह करके हंसने लगे।

कुमुद ने कहा—'अब आप खिसकिए। वहां मुवक्किल लोग बैठे हैं, मुन्शी कई बार आ चुका है।'

'किशोरी ने धीरे से कहा—'जीजी, उन्हें घर से क्यों भगाती हो ?'

कुमुद ने कहा—'यह वकीलों की वकालत होने लगी।'

राजेश्वर ने अब एक बार किशोरी को भली भांति देखा, वह लजाकर सिकुड़ गई।

राजेश्वर ने बातचीत का बहुत कुछ आयोजन किया, पर उन्हें कहने योग्य कोई बात ही न सूझ पड़ी। वह उठकर चलने लगे।

कुमुद ने इसी बीच उठते-उठते कहा—'आपके लिए नाश्ता लाती हूं। कुमुद उठ गई। किशोरी ने उठकर कुमुद के साथ जाना चाहा, पर वह उठ भी न सकी, और बैठना भी उसके लिए भार हो गया। फिर भी वह चुपचाप धरती पर बैठी रही। बहुत चेष्टा करने पर भी राजेश्वर उससे एक शब्द भी न कह सके, उसकी ओर देख न सके।

कुमुद दो तश्तरियों में नाश्ता सजा लाई। एक तश्तरी पति के आगे रखकर दूसरी किशोरी के आगे रख दी और मुस्कराकर उसे खाने का अनुरोध किया।

किशोरी वहां से भागने की कोशिश में थी, पर यही सबसे कठिन था। वह कुमुद से और भी अधिक सटकर बैठ गई। कुमुद ने बलपूर्वक उसके मुंह में इमरती ठूंस दी। उसने आंचल में मुंह छिपा लिया।

ये सभी दृश्य राजेश्वर के लिए असाधारण प्रभावशाली थे। किशोरी घबराकर वहां से उठकर जाने लगी। कुमुद ने बहुत रोका, पर वह चली गई।

राजेश्वर मन के उद्वेग को न रोककर बोले—'उसे नाराज क्यों कर दिया ?'

'आपको क्या ज्यादा बुरा लगा ?'

'उसे मनाना चाहिए।'

'तब मना लाइए।'

'मैं उससे क्या बोलूंगा, तुम उसे बुला लो।'

कुमुद ने बाहर आकर देखा, वह खड़ी हुई मिसरानी से बातें कर रही है। कुमुद ने भीतर पति की ओर ताककर कहा—'अब आप बाहर तशरीफ ले जाइए, तब वह आएगी।'

राजेश्वर चले गए।

कुमुद ने किशोरी से कहा—'आ किशोरी, वह चले गए, अब क्यों भागती है !'

'किशोरी ने गर्दन टेढ़ी करके, ज़रा हंसकर कर कहा—'उन्हें क्यों भगा दिया ?'

'तब बुलाऊं फिर ?'

किशोरी हंसते-हंसते कुमुद से लिपट गई। उसने कहा—'जीजी यह तो बहुत अच्छे हैं।'

पति की इतनी मधुर आलोचना सुनकर कुमुद आनन्द-विभोर हो गई। उसने किशोरी के तड़ातड़ चुम्बन पर चुम्बन ले डाले।

उस दिन कोई पर्व था। कुमुद बहुत जल्दी उठकर यमुना स्नान को चली गई। महराजिन उसके साथ गई थी, घर में नौकर छोकरा झाड़ू लगा रहा था। राजेश्वर मीठी नींद में पड़े थे, कुमुद ने उन्हें जगाया भी न था, बताया भी न था। वह बहुधा ऐसा ही करती थी।

आंख खुलने पर राजेश्वर ने देखा बिस्तर पर कुमुद नहीं है। उन्होंने छोकरे को पुकारकर पूछा, तो मालूम हुआ वह महराजिन को साथ लेकर यमुना स्नान को गई हैं।

'गाड़ी ले गई है या नहीं ?'

इसका अनुकूल उत्तर पाकर वह फिर आंख मूंदकर पड़े रहे।

छोकरा बाहर दफतर में झाड़ू लगा रहा था। राजेश्वर चुप-चाप पड़े थे। प्रात:काल का मधुमय समीर बह रहा था। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि घर में कोई घुसा है। उसके घुसने से घर में सौरभ का प्रसार हुआ है। उन्होंने समझा, कुमुद स्नान करके साथ में बहुत से फूल और चन्दन लेकर वापस आई है। उसके सामने अभी तक पड़े सोते रहने का स्वांग करके अहदीपन का खिताब तथा एक-आध जली-कटी सुननी चाहिए।

कुछ देर चुप पड़े रहने पर भी उन्हें कुछ खटका नहीं प्रतीत हुआ। उन्होंने मुंह उठाकर देखा, द्वार के पास किवाड़ से सटी हुई किशोरी खड़ी है। उसे भ्रम था कि कुमुद सो रही है, वह चुपचाप उसे जगाने की ताक में थी। पर निर्णय नहीं होता था। अब एकाएक राजेश्वर को सामने देखकर वह घबरा गई। पर वह भागी नहीं, उसने अपने को सम्भाला, और मुस्कराकर राजेश्वर को प्रणाम किया।

आज इस समय इस शून्य घर में किशोरी को इस अवस्था में देखकर राजेश्वर के शरीर में प्रसुप्त वासना का एकबारगी

उदय हो ही गया। क्षणभर वह श्वास भी न ले सके। कुछ देर वह उसे देख न सके, न एक शब्द कह सके।

किशोरी यह देख वहां से खिसक चली। राजेश्वर ने कठिनाई से कहा—'जाती कहां हो किशोरी, कैसे आई थीं ?'

'मैं बहिनजी को बुलाने आई थी, जमुना जाना था, रात उन्होंने कहला भेजा था, कहां हैं ?'

राजेश्वर ने झूठ बोल दिया—'ठहरो, वह अभी आती है।' झूठ कहकर वह मानो थर-थर कांपने लगे। उनका कंठ सूख गया। उन्हें मानो ज्वर का वेग हो गया। उन्होंने सूखे कंठ से कहा—'बैठो किशोरी।'

किशोरी खड़ी ही रही। वह कुछ भी निर्णय न कर सकी। न वह जा ही सकी। इस बीच में राजेश्वर साहस करके उठकर उसके पास आए। उसने समझा, वह बाहर जा रहे हैं। वह द्वार से हटकर कमरे में एक ओर हो रही।

हठात् राजेश्वर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—'किशोरी, क्या तुम मुझसे डरती हो ?'

किशोरी के शरीर में रक्त की गति रुक गई। वह पीपल के पत्ते की भांति कांपने लगी। वह सिकुड़कर वहां से चलने लगी।

राजेश्वर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—'किशोरी, मैं तुम्हें प्यार करता हूं। किसीसे कहना नहीं, कुमुद से भी नहीं।'

किशोरी ने थोड़ा बल किया पर जब वह हाथ न छुड़ा सकी तो उसने आर्तनाद करके कहा—'छोड़िए, मैं जाती हूं।'

'किशोरी जाओ नहीं, मैं तुम्हें देखने को सदैव पागल रहता हूं।'

किशोरी की आंखों में आंसू भर आए। उसने रोते-रोते कहा—'छोड़िए, छोड़िए, नहीं···छोड़िए।'

राजेश्वर धीरे-धीरे पाशविक वासना से ओत-प्रोत हो रहे थे। उन्होंने और भी कसकर उसका हाथ पकड़ लिया और सूखे गले तथा भराई आवाज में कहा—'किशोरी, मेरा प्राण निकल जाएगा, मैं तुम्हें प्राण से अधिक चाहता हूं।' उन्होंने उसे खींच कर अपने निकट कर लिया। किशोरी भयभीत होकर एकबारगी ही चिल्ला उठी। यह देखकर राजेश्वर ने अपने बलिष्ठ हाथों से उसका मुंह बड़े जोर से दबाकर उसे धरती पर पटक दिया।

अकस्मात् ऐसा पाशविक आक्रमण किशोरी न सह सकी। वह सकते की हालत में करुण दृष्टि से राजेश्वर को देखने लगी। उसके मुंह से शब्द भी न निकले। धीरे-धीरे वह बेहोश होने लगी। राजेश्वर ने उसे अपने हाथों ऊपर उठा लिया। उसका खुला मुख, अधखुली आंखें और शिथिल शरीर एवं विमुक्त अलकावलियां, प्रभात की उन्मुक्त वायु का झोंका, सभी ने राजेश्वर की पशु-वासना को अन्धा बना दिया। वह घोर अपवित्र भावना से उस महापवित्र कुमारी का मुख चुम्बन करने को नीचे झुके।

एक तीव्र झंकार से चौकन्ने होकर उन्होंने पीछे देखा। कुमुद द्वार पर भौंचक खड़ी है। उसके हाथ से फूल, चंदन और जल की झारी से भरा थाल छूटकर फर्श पर झन्न से गिर गया है। क्षणभर में ही वह सब कुछ समझ गई। वह अग्निमय नेत्रों से पति को देखती हुई भीतर चली आई। राजेश्वर से उसने एक शब्द भी न कहा। वह चुपचाप किशोरी को उसी अवस्था में छोड़कर बाहर चले गए।

कुमुद ने किशोरी को झटपट उठाकर पलंग पर सुलाया। परन्तु इससे प्रथम ही वह होश में आ गई। वह कुमुद को देखते ही 'जीजी, जीजी' कहकर उसके गले से लिपटकर रोने लगी।

कुमुद भी खूब रोई।

किशोरी ने अन्त में कहा—'जीजी, क्या वह ऐसे हैं?'

'किशोरी, मुझे इसका स्वप्न में भी संदेह न था। मैं पृथ्वी में सबसे अधिक गर्व अपने पति पर करती थी, और उन्हें अपने प्रेम के कवच से रक्षित समझती थी। आज मैंने उन्हें पहचाना। किशोरी, मैं बड़ी ही अभागिन और अधम नारी हूं।'

'नहीं जीजी, ऐसा न कहो, तुम्हारा इसमें क्या दोष है?'

'सब मेरा ही दोष है। मैंने ही तुझे उनके सामने भेजा, हंसी की, और उनमें साहस उत्पन्न किया। पर मुझे क्या मालूम था कि विनोद को भी पापी व्यक्ति पाप के रूप में काम में लाता है।'

किशोरी कुछ न कहकर उठ खड़ी हुई।

'कुमुद ने कहा—'क्या जाती हो? अभी न जाने पाओगी।'

'क्यों?'

'क्या तुम मुझसे भी घृणा करती हो?'

'नहीं जीजी।' किशोरी की आंखों में आंसू भर आए।

'वैसा ही समझती हो?'

'वैसा ही।'

'तब अभी ठहरो, मैं तुम्हें साथ चलकर पहुंचा दूंगी।'

'अभी चलो जीजी।'

'ज़रा ठहर, एक और वचन लूंगी।'

'क्या?'

'यह बात कभी किसीसे न कहेगी, कभी भी।'

'न कहूंगी।' किशोरी ने उदास स्वर में कहा।

'और यहां बराबर उसी भांति आती रहेगी।'

किशोरी ने कातर दृष्टि से कुमुद को देखकर कहा—न, यह न होगा जीजी।'

'तब मैं जहर खाकर प्राण त्याग दूंगी।'

'ना जीजी, यह क्या कहती हो?'

'तुझे नित्य इसी भांति आना पड़ेगा।'

'परन्तु...।'

'मेरे दम में दम है, वहां तक कोई तुझे छू भी न सकेगा आंख उठाकर भी न देख सकेगा।'

'मैं आऊंगी जीजी।' किशोरी जोर से रोकर कुमुद से लिपट गई। कुमुद रोई नहीं। वह कुछ देर चुपचाप उसे छाती से लगाए खड़ी रही। इसके बाद उसने, उसे कुर्सी पर बैठाकर कहा—'अब यहीं नहा लें, फिर भोजन कर घर चलेंगे। मैं माता जी को कहलाए देती हूं।'

कुमुद ने यही किया। वकील साहब बिना भोजन किए ही कचहरी में भाग गए। कुमुद ने भी कुछ भोजन नहीं किया। किशोरी ने नाममात्र को खाया। इसके बाद कुमुद किशोरी के घर जाकर उसे छोड़ आई। उस दिन संध्या तक वह वहीं रही। चलती बार एकांत पाकर उसने किशोरी के पैर छूकर कहा—'किशोरी, मेरी इज्जत तेरे हाथ है। तूने वचन दिया है, पूरा करना।'

किशोरी ने कुमुद की गोद में मुंह छिपाकर कहा—'यह क्या कहती हो जीजी, प्राण जाएं पर वह बात मुंह से न निकलेगी।'

कुमुद ने व्याकुल दृष्टि से उसे ताकते हुए कहा—'उनसे साक्षात् होने पर तुझे उसी भांति बोलना और व्यवहार करना पड़ेगा जिस भांति अब तक करती रही है।'

किशोरी ने आंखों में आंसू भरकर कहा—'मैं करूंगी जीजी।'

कुमुद उसे छाती से लगा और प्यार करके घर चली आई।

रात को राजेश्वर साहस करके घर में आए। कुमुद फर्श पर बैठी कुछ फटा वस्त्र सी रही थी। वह सामने कुर्सी पर बैठकर अकारण ही हंसने लगे।

कुछ ठहरकर कुमुद ने कहा—'भोजन हुआ या नहीं, मैं ज़रा किशोरी के घर गई थी।'

'भोजन कर लिया।' वह फिर हंसने लगे।

कुमुद अपना वस्त्र सीती रही। उसने सीते-सीते ही कहा—'आप सुबह खाना बिना खाए ही क्यों चले गए थे?'

'भूख ही नहीं थी, फिर तुम्हारे तीखे नयनों का भी भय था।' वह फिर ही-ही करके हंसने लगे।

कुमुद ने वस्त्र और सूई एक तरफ रख दी। वह एक कुर्सी पर पति के सामने बैठ गई। उसने कहा—'आज बहुत हंसी आ रही है, इसका कारण क्या है?'

कुछ भी जवाब न देकर राजेश्वर जोर-जोर से हंसने लगे। इसके बाद वह कचहरी, मुवक्किल आदि की बहुत-सी फालतू बातें बक गए। कुमुद ने सहज-गंभीर स्वर में कहा—'सुबह की घटना का क्या कारण था?'

राजेश्वर सहम गए, परन्तु वह फिर ही-ही करके हंस दिए। उन्होंने कहा—'उसीने छेड़-छाड़ की थी।'

'उसने क्या किया था?'

'छेड़-छाड़।'

'अच्छा, फिर आपने क्या किया?'

'मैंने भी वही किया।' वह फिर ही-ही करके हंसने लगे।

'अर्थात्?'

'अर्थात्?' वह फिर हंसने लगे।

कुमुद ने कहा—'आपने भी छेड़छाड़ की।'

'की तो।'

'क्यों ?'

कुमुद के प्रश्न का लहजा देखकर वकील साहब जरा सिट-पिटाए। पर फिर उन्होंने हंसकर कहा—'मेरा क्या कसूर है, वह क्यों आई थी मेरे पास ?'

'क्या आप समझते हैं कि वह इसीलिए आई थी ?'

'इसीलिए आई होगी।' राजेश्वर पत्नी की आंखों से दृष्टि न मिला सके, वह इधर-उधर देखने लगे। चाह कर भी वह हंस न सके।

कुमुद ने अपने वस्त्र से पिस्तौल निकालकर धीरे से उसका घोड़ा दबाया। यह देख राजेश्वर का रोम-रोम कांप गया। वह कुर्सी से उछलकर खड़े हुए। उन्होंने चीखकर कहा—'यह क्या ? क्या तुम मुझे गोली मारोगी ?'

'अभी नहीं, मैं यह देख तो लूं, कसूर किसका था। जिसका कसूर होगा उसे ही गोली मारी जाएगी। हां श्रीमान् जी, कहिए, वह क्या इसीलिए आई थी ?'

'मैं कैसे कह सकता हूं।'

'तब आपने यह कहा कैसे ?'

राजेश्वर कुछ भी जवाब न दे सके। वह इधर-उधर ताकने लगे।

कुमुद ने खड़े होकर कहा—'बैठ जाइए श्रीमान्, आप ठीक-ठीक बताइए कि वह क्यों आई थी ?'

'यह मैं नहीं जानता।'

'आप अवश्य जानते हैं।'

'मैं नहीं जानता।' उन्होंने क्रोध के स्वर में कहा।

'आप क्या इस समय क्रोध भी करने की हैसियत रखते हैं ? कहिए, वह क्यों आई थी, सत्य कहिए, आप मेरे पति हैं, मैंने आपको देवता समझा है।'

'वह तुम्हें यमुना ले जाने के लिए आई थी।'

'तब आपने उसे छेड़ा।'

राजेश्वर ने नीची गर्दन किए धीमे स्वर में कहा—'हां।'

'उसने क्या किया ?'

'मिन्नतें कीं, फिर भय से बेहोश हो गई।'

'आपने यह कुकर्म क्यों किया स्वामी ?'

राजेश्वर चुपचाप कुमुद के मुख को ताकते रहे। वह बोल न सके।

कुमुद ने कहा—'मेरा जीवन, गृहस्थ धर्म, पुण्य, सभी अकारथ हुआ। जिसे मैंने देवता समझकर पूजा, वह अब इतने दिन बाद पशु प्रमाणित हुआ।'

राजेश्वर चुप बैठे रहे।

'कहिए स्वामिन्, मेरे पूज्य देवता, क्या मैंने नित्य आपके पैरों की धूल मस्तक तक नहीं लगाई ?'

राजेश्वर चुप रहे।

'क्या मैंने सदा आपकी परछाईं को अपने समस्त प्राण और शरीर से अधिक पवित्र नहीं समझा ?'

राजेश्वर फिर भी नहीं बोले। कुमुद ने फिर कहा—'क्या मैंने अनगिनत व्रत उपवास करके आपके जीवन, आपके प्राण, आपके व्यक्तित्व की रक्षा के लिए देवताओं से याचना नहीं की ? क्या इस पृथ्वी पर आपके समान पवित्र, महान् सद्गुण-युक्त पुरुष मेरी दृष्टि में दूसरा है ?'

राजेश्वर की आंखों में आंसू आकर बहने लगे। उनके होंठ हिले, पर वह कुछ न कह सके।

कुमुद के स्वर में दृढ़ता थी। उसने कहा—'श्रीमान् जी, क्या आपके घर आने पर किसी भले घर की बेटी की इज्जत की रक्षा भी सम्भव नहीं हो सकती ? आपकी धर्मपत्नी से मिलने क्या

किसीकी बहू-बेटी का यहां आना इतना भयानक है? आप वकील हैं, प्रतिष्ठित हैं, विद्वान् हैं। लोग आपको सलाम करते हैं, आपको हुजूर कहकर पुकारते हैं, आपको बड़ा समझते हैं। आप एक जिम्मेदार सद्‌गृहस्थ हैं, पर क्या इन सब उत्तरदायित्व की बातों को आप पहचानते हैं? क्या कुमारी कन्याओं की माताएं आपकी पत्नी की पवित्रता पर विश्वास करके अपनी पुत्रियों को भेज देती हैं, तो यह उनकी भारी भूल नहीं? क्या आपका यह घर अति अपवित्र और सामाजिक जीवन का दुर्घट स्थान नहीं?'

राजेश्वर ने आवेश में आकर कहा—'कुमुद, तुम मुझे गोली मार दो अथवा पिस्तौल मुझे दो, मैं स्वयं इन पतित प्राणों का अपहरण करूंगा। मुझे अब लज्जित न करो।'

कुमुद ने अति गम्भीर वाणी में कहा—'स्वामी, क्या कभी और कहीं भी आपने ऐसा पाप किया था?'

'नहीं कुमुद।'

'मन, वचन, कर्म से?'

'कभी नहीं कुमुद, क्या तुम विश्वास न करोगी, मैं विश्वास के योग्य नहीं रहा।'

वह कुर्सी को छोड़कर धरती पर बैठ गए और दोनों हाथों से मुंह ढककर रोने लगे।

कुमुद ने पिस्तौल स्वामी के आगे रखकर कहा—'इसमें अपराध मेरा है, आप मुझे गोली मार दीजिए। मैं स्वयं आत्मघात न कर सकूंगी।'

'तुम्हारा क्या अपराध है कुमुद?'

'मैंने ही इस पाप का बीज बोया। मर्यादा के विपरीत उस कन्या को हास्य में तुमसे परिचित कराया। तुम्हारा और उसका भी साहस बढ़ाया। परन्तु मुझे यह स्वप्न में भी कल्पना न थी कि पुरुष इतने पतित होते हैं। स्वामी, स्त्री एक ऐसी कोमल लता है,

जो पुरुष-रूपी दृढ़ वृक्ष के सहारे लिपटी रहती है। पुरुष स्त्री के लिए आदर्श वस्तु है। स्त्रियां हर बात में पुरुष को श्रेष्ठ और आदर्श मानती हैं। पर पुरुष यदि आदर्श से इतने गिर जाएं, तो फिर जीवन के एकांत क्षण भी विनोद और सरस जीवन से रहित हो जाएं।'

'तुम सच कहती हो कुमुद। परन्तु इसी युक्ति के आधार पर मैं कहता हूं कि तुम अपराधिनी नहीं। यदि तुमने अपने दाम्पत्य-परिधि के विनोद में उस बालिका को सम्मिलित किया, तो इसमें तुम्हारा दोष न था। तुम मेरी पत्नी हो, यह मुझे समझना चाहिए था। वह तुम्हारी सखी है—उसकी मर्यादा का पालन तो मुझे करना था। कुमुद, मैं समझ गया। पतित मैं हूं। पाप तो मैंने किया है, परन्तु वह तुम्हें पापिन समझेगी।

'वह यही समझेगी कि यह चरित्रहीन स्त्री परायी बहू-बेटियों को सहेली बनाकर अपने पति से संश्लिष्ट कराती है। हाय, मैं यह कैसे सुन, सह सकूंगा कुमुद?'

'वही तो स्वामी। उत्तम है, तुम मेरा प्राण हरण करके स्वयं भी आत्मघात कर लो। पिस्तौल में तीन गोलियां हैं।'

कुछ देर राजेश्वर स्तब्ध बैठे रहे। इसके बाद उन्होंने कहा—'नहीं कुमुद, यह ठीक दण्ड न होगा। हमें प्राणनाश न करना चाहिए। क्या तुम विश्वास करती हो कि मेरी प्रवृत्ति बदल गई है। तुम्हारी सखी के प्रति मेरे भाव अब क्या हैं, यह भी जानती हो?

'हां।'

'और सदैव आजन्म संसार-भर की स्त्रियों के प्रति मेरे क्या भाव रहेंगे, यह भी समझ गईं?

'समझ गई।'

'प्रिये, इस पाप का हम दोनों ही को प्रायश्चित करना

होगा ?'

'कौन प्रायश्चित ?'

'अब सो रहो, सुबह कहूंगा।'

'अच्छी बात है, एक अनुष्ठान जोड़ देना होगा।'

'वह क्या ?'

'तीन वर्ष तक हम दोनों पृथक् कमरे में शयन करेंगे।'

'अच्छी बात है।'

'कभी स्पर्श न करेंगे।'

'अच्छा।'

'यह बात कभी किसी पर किसी भांति प्रकट न की जाएगी। यदि प्रकट हो गई, तो उसी दिन से शुरू करके फिर तीन वर्ष गिने जाएंगे।'

'अच्छा, कुमुद यही होगा।'

'हम लोग भूमि पर सोएंगे, एक वक्त भोजन करेंगे।'

'मंजूर है।'

'तब स्वामी, आज के मेरे इस अप्रिय व्यवहार पर दया कीजिए। जाइए, बाहर आपके शयन की उचित व्यवस्था हो जाएगी।'

राजेश्वर चुचाप चले गए।

होली का दिन था। कुमुद रसोई बना रही थी। एक थाल को आंचल से छिपाए किशोरी वहां पहुंच गई। वह बहूमूल्य गुलाबी साड़ी पहने थी। कुमुद के सामने वह खड़ी-खड़ी हंसने लगी। कुमुद ने उसे भोजन का निमन्त्रण दिया था। इतनी जल्द उसे आया देखकर उसने कहा—'इतनी भूखी हो ? अभी से आ गईं। अभी तो कुछ बना भी नहीं।'

'मैं बना लूंगी। परन्तु पहले इधर देखो।' उसने थाल की ओर इशारा किया।

'यह क्या है री ?'

उसने थाल पर से आंचल हटाया। उसमें रोली, गुलाल, रंग और मिठाई थी। उसने लज्जा से लाल चेहरे को ऊपर उठाकर कहा—'मैं जीजाजी से होली खेलने आई हूं।'

'पागल हुई है क्या ?'

'जो समझो। उन्हें बुला दो न।'

'इसकी जरूरत नहीं है, तू बैठ।'

'मैं स्वयं बुला लाती हूं।'

'नहीं, वह नहीं हो सकता।' कुमुद ने अत्यन्त रूखे स्वर में कहा। किशोरी की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। वह उसी भांति थाल लिए खड़ी रही।

उसकी आंखों में आंसू देख कुमुद रसोई छोड़, उठकर उसके पास आई। इसके आंसू पोंछकर कहा—'अरे, रोती क्यों है री पगली !'

'मैं होली खेलकर जाऊंगी। उस दिन तुमने क्या कहा था, जानती हो ?' कुमुद ने क्षणभर किशोरी की ओर देखा, उसकी आंखें भर आईं। वह बिना उससे कुछ कहे राजेश्वर को बुला लाई। भीतर आकर राजेश्वर ने देखा, किशोरी चुपचाप थाल गोद में लिए खड़ी है। उसकी शोभा, ओस से भीगे गुलाब के समान थी। उन्होंने मुस्कराकर कहा—'मामला क्या है ? बेवक्त की तलबी क्यों ?'

'आपकी साली साहिबा होली खेलने आई हैं। जूता उतारकर भीतर आइए।'

राजेश्वर भीतर आकर चौकी पर बैठ गए। किशोरी ने सामने बैठ, थाल चौकी पर रख उनके माथे पर गुलाल लगा,

रोली का टीका किया, फूलों की माला पहनाई, और आंचल गले में लपेट झुककर राजेश्वर के पैर छुए। फिर मुस्कराकर धीमे स्वर में कहा—'इसमें से कुछ मिठाई खाइए।'

राजेश्वर ने बलपूर्वक आंसू रोककर मिठाई का एक टुकड़ा खाया। इसके बाद सौ रुपये का नोट किशोरी की गोद में डाल थाल से अंजलि भर फूल उठा किशोरी पर बरसा दिए।

वह चले गए।

उनके होंठों पर हास्य और आंखों में आंसू भरे थे।

□□